छात्र हितकारी पुस्तकमाला—संख्या ७

हम सौ वर्ष कैसे जीवें

Ham Sou Varsh Kaise Jive

[How to live one hundred years]

शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्

केदारनाथ गुप्त, एम० ए०

K.N. Gupta.

छात्रहितकारी पुस्तकमाला–सं० ७

हम सौ वर्ष कैसे जीवें

OR

How to live a hundred years

(स्वास्थ्य सम्बन्धी एक उत्कृष्ट पुस्तक)

लेखक

श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०

प्रिंसपल—अग्रवाल विद्यालय इण्टर मीडियेट कालेज, प्रयाग

प्रकाशक

छात्रहितकारी पुस्तकमाला

दारागंज, प्रयाग।

छठवीं वार १५००

१९३८

मूल्य १)

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशक
श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०
प्रोप्राइटर—छात्रहितकारी पुस्तकमाला,
दारागंज, प्रयाग।

acc. no: ९१९०.

मुद्रक—
श्री रघुनाथप्रसाद वर्मा,
नागरी प्रेस, दारागंज,
प्रयाग।

समर्पण

सच्चे देशभक्त, सहृदय, प्रेम-मूर्ति,

उच्चमना, परम उदार,

'सेवा समिति' प्रयाग

बालचर मण्डल के

स्तम्भस्वरूप

पण्डित श्रीराम जी वाजपेयी

के कर-कमलों में लेखक द्वारा

सादर समर्पित।

—:०:—

विषय सूची

—:❀:—

परिशिष्ट

प्रस्तावना

ले०—पं० बाबूराव विष्णु पराड़कर

सम्पादक "आज" काशी

जिस पुस्तक की आवश्यकता और उपयोगिता स्वयं सिद्ध है उसकी प्रस्तावना लिखने का अनुरोध ग्रन्थकार श्रीयुत केदारनाथ गुप्त ने मुझसे किया है। भारत की हीनावस्था का यह भी एक प्रमाण है कि स्वास्थ्य-रक्षा और शारीरिक उन्नति की आवश्यकता उन लोगों को समझाने का समय आ गया है जिनके पूर्वज बल-वीर्य के लिए प्रसिद्ध थे। इस दुःख में भी संतोष का विषय इतना ही है कि इस ओर अब शिक्षित समाज का ध्यान जाने लगा है और इस विषय पर हिन्दी में भी बहुत कुछ लिखा-पढ़ी होने लगी है। परन्तु अब तक इस विषय पर जिन जिन सज्जनों ने लेखनी उठाई है, इनमें प्रायः इस विषय के मूलतत्व के ज्ञान का अभाव ही दिखाई दिया है। परन्तु "हम सौ वर्ष कैसे जीवें" पुस्तक में मूलतत्व की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया गया है, यह बात निश्चित रूप से कही जा सकती है।

लेखक ने शरीर-रचना का संक्षेप में परिचय देकर प्रकृति और मनुष्य के सम्बन्ध पर चित्ताकर्षक विचार किया है। तदनन्तर शुद्ध जल, शुद्ध वायु और आहार के सम्बन्ध में भली भाँति विचार कर शरीर की बाहरी और भीतरी सफ़ाई पर ज़ोर दिया है, जो वस्तुतः व्यायाम से भी अधिक महत्व की बात है। तदनन्तर मानव जीवन के सच्चे सुख का जो आधार ब्रह्मचर्य है उसकी आवश्यकता और स्वरूप का वर्णन किया है। इस विषय के महत्व का जितना वर्णन किया जाय थोड़ा ही है। ब्रह्मचर्य का अर्थ केवल वाह्य संयम ही नहीं; मानसिक संयम भी है। बुरे विचारों और विशेषकर सतत काम विषय पर सोचते रहने का इतना भयंकर परिणाम शरीर पर पड़ता है जितना यदा-कदा किये जाने वाले बुरे कामना का भी नहीं पड़ता, यह बात कम लोग समझते हैं, और हम भारतवासियों के शारीरिक अधःपात

का यह सब से बड़ा कारण है। शृङ्गार विषयक पुरानी कविताओं और नवीन उपन्यासों ने इस सम्बन्ध में देश को सब से अधिक हानि पहुँचाई है। "स्वास्थ्य पर मन का प्रभाव" शीर्षक अध्याय से इसका ज्ञान भी पाठकों को हो जायगा।

"प्राणायाम" शीर्षक अध्याय भी बड़े महत्व का है। यह योग का प्रधान अंग और स्वास्थ्य का मूलाधार है। श्वास प्रश्वास जीव मात्र के लिये स्वाभाविक है; पर इससे यह न समझना चाहिये कि मनुष्य स्वाभाविक रीति से ही यह क्रिया करता है। इस विषय का विचार हमारे पूर्वजों ने बहुत अधिक किया है और पाश्चात्यों का ध्यान भी इस ओर गया है। यहाँ पर इतना ही कह देना अलम् होगा कि शारीरिक व्यायाम के साथ साथ श्वास प्रश्वास की वैज्ञानिक रीति पर भी विशेष ध्यान रखना बहुत आवश्यक है। अपने आयुष्य का अधिक समय शारीरिक व्यायाम में बिताने वाले और स्त्री प्रसंग के सम्बन्ध में भी संयम से काम लेने वाले बड़े बड़े पहलवान प्रायः अल्पायु हुआ करते हैं, इसका कारण यह है कि वैज्ञानिक व्यायाम द्वारा शरीर के भीतरी यंत्रों (organs) की शक्ति बढ़ाने की ओर वे विशेष ध्यान नहीं देते, पर सब से बड़ा और मुख्य कारण यह है कि व्यायाम करते समय वैज्ञानिक रीति से श्वास प्रश्वास करने की ओर बिल्कुल ही ध्यान नहीं दिया जाता। पूरे सौ वर्ष, और उससे भी अधिक जीने तथा अन्त तक स्वास्थ्य और बल की रक्षा के लिये प्राणायाम की बड़ी आवश्यकता है। आशा है, अगले संस्करण में इस विषय पर अधिक विस्तार के साथ विचार किया जायगा।

अन्त में, ऐसी उपयोगी पुस्तक लिखने के लिये मैं श्रीयुत् केदारनाथ गुप्त को बधाई देता हूँ। आशा है कि हिन्दी संसार इसका समुचित आदर करेगा तथा भारत की भावी आशा के अंकुर हमारे होनहार विद्यार्थी इससे विशेष रूप से लाभ उठावेंगे।

लेखक का निवेदन

क्या विद्यार्थी, क्या अध्यापक, क्या ग्रामीण, क्या नागरिक, क्या धनी, क्या निर्धन सभी भारत-निवासियों का स्वास्थ्य धीरे धीरे गिर रहा है। जिन भारत-निवासियों की आयु सैकड़ों वर्ष की होती थी, आज उनको २० वर्ष भी सुखपूर्वक जीवित रहना कठिन हो रहा है। बहुत से लोगों का कहना है कि कलियुग है, इसमें तो आयु और भी अल्प होगी, किन्तु मैं इसे मानने को तैयार नहीं हूँ। दूसरे देश के निवासी तो अपनी आयु धीरे धीरे वैज्ञानिक साधनों से बढ़ा रहे हैं और हमारे देशवासी कपाल पर हाथ रक्खे कलियुग की दोहाई दे रहे हैं। अंगरेजों की औसत आयु ४४ वर्ष है, फ्रांसीसियों की ४२, जर्मनों की ४१, डेन्सों की ५०; वेलजियनों की ४७, स्वेडन वालों की ५१ और हालैंड निवासियों की ४८ वर्ष हैं। केवल भारत ही ऐसा देश है जिसके निवासियों की औसत आयु केवल २५ वर्ष है। ह्रास का क्रम यदि ऐसा ही जारी रहा तो हम बिल्कुल निकम्मे हो जायँगे और जीवन संग्राम में हम किसी देश से आँख न मिला सकेंगे।

योरोपीय देश के लेखकों और कवियों की आयु ८०, ८०, ६०, ६०, वर्ष की होती है; किन्तु हमारे यहाँ के अधिकांश कवि और लेखक केवल ४०, ५०, वर्ष की आयु में बूढ़े हो जाते हैं। दूसरे देशों के विद्यार्थी ३०, ४० वर्ष में तरुण होते हैं, हमारे यहाँ का विद्यार्थी समुदाय ३०, ४० वर्ष में बुढ़ापे में पदार्पण करता है; दूसरे देशों के धनिक पढ़े-लिखे पूरी आयु तक स्वास्थ्य का उपभोग करते हैं, हमारे यहाँ का धनिक-मण्डल अधिकतर छोटी ही अवस्था में नाना प्रकार के रोगों से पीड़ित रहता है। कभी कोई भारतवासी क्या सोचता है कि हमारी ऐसी अवस्था क्यों है और दूसरे देश के निवासी स्वास्थ्य के मैदान में हम से क्यों बाज़ी मार रहे हैं। बहुतों का वही पुराना मत है कि कलियुग

है। अरे भाई, कलियुग तो है ही; किन्तु कलियुग को हम और महा कलियुग अपने हाथ से बना रहे हैं। अब हमें इस ह्रास पर गम्भीरता पूर्वक बिचारना होगा और देखना होगा कि वास्तव में हमारे स्वास्थ्य पतन के मुख्य कारण क्या हैं।

मुख्य कारण स्वास्थ्य हीन होने का वीर्य्यनाश है। वीर्य्य का नाश लड़कपन से प्रारम्भ होता है। १२, १२, १६, १६, वर्ष के नवयुवक घृणित तरीकों से आँखों से देखते और दिमाग़ों से सोचते वीर्य्य नाश की ओर तत्पर होते हैं; बहुतों के तो विवाह लड़कपन में हो जाते हैं और छोटी आयु से ही उनका संयोग पत्नी के साथ प्रारम्भ हो जाता है। आश्चर्य तो यही है कि हम इतने कम वर्षों तक भी किस प्रकार जीवित रहते हैं।

स्वास्थ्यहीनता का दूसरा कारण व्यायाम का अभाव है। दुनिया के सब कामों को करने का सावकाश मिलता है, एक व्यायाम ही के लिये आध घंटे का समय नहीं मिलता। गपशप, नाच-रंग, ताश-शतरंज के खेलों में हम घंटों खो देते हैं; किन्तु व्यायाम का प्रश्न आने पर हम कहते हैं कि फ़ुरसत नहीं है।

स्वास्थ्यहीनता का तीसरा कारण भोजन की अव्यवस्था है। प्राकृतिक भोजन छोड़कर हम नाना प्रकार के गरिष्ट और अखाद्य पदार्थों का भोजन करते हैं। खाने का समय भी कोई निश्चित नहीं रहता, दिन-रात जब तबिअत चल गई तभी कुछ न कुछ खाने लगते हैं। इतने खाने से आजकल जितने भारतवासी मर रहे हैं उतने भारतवासी अकाल में भी नहीं मरते।

हम स्वास्थ्य की अन्य छोटी छोटी बातों पर भी तो ध्यान नहीं देते। वायु के महत्व को नहीं समझते, गन्दा अपेय जैसा पानी मिला वैसा ही पी लेते हैं; पेशाब पाखाना कहाँ फिरना चाहिये इसकी भी हममें तमीज़ नहीं है; कई दिन तक हम रोज़ स्नान नहीं करते; मैले

कपड़े हफ़्तों शरीर में टाँगे रहते हैं, हम उन्हें साफ रखने का कष्ट भी नहीं उठाते। जब ऐसे ऐसे कारण मौजूद हैं तो हम अपना जीवन किस प्रकार स्वस्थ रख सकते हैं। दूसरे देश के निवासी उपरोक्त ख़राबियों को बहुत दूर कर चुके हैं और धीरे धीरे दूर करके कहीं आगे बढ़ रहे हैं और हम बैठे बैठे अभी अपने कपाल को ही ठोंक रहे हैं।

अब हमें भी साहस करना होगा। ब्रह्मचर्य्य का पालन करना होगा; सादा सात्विक भोजन करना तथा स्वच्छ जल पीना होगा, स्वच्छ वायु सेवन करना होगा, विचार पवित्र रखने पड़ेंगे, कपड़ों और शरीर की सफ़ाई पर पूरा ध्यान देना होगा, तभी हम स्वस्थ रहकर पूर्ण आयु का भोग कर सकेंगे और तभी हम कम से कम १०० वर्ष पर्य्यन्त जीवित रह सकेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक इसी उद्देश्य से लिखी गई है और इसका नाम भी "हम सौ वर्ष कैसे जीवें" रक्खा गया है। इसमें अमली ढङ्ग पर उपरोक्त विषयों में से एक एक पर विवेचना की गई है। कम से कम ५० स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें और बहुत से समाचार पत्रों को पढ़ कर इस पुस्तक की रचना हुई है। मेरा तो विश्वास है कि इसमें पाठकों को और विशेषकर विद्यार्थी समुदाय को स्वास्थ्य लाभ में बड़ी सुगमता होगी।

इस विषय की पुस्तक के लिखने में मैंने वास्तव में धृष्ठता की है। यह विषय डाक्टरों का है और उन्हें लिखना चाहिये किन्तु जब तक वे इस विषय को अपनी मातृभाषा हिन्दी में लिखने का साहस नहीं करते तब तक इस पुस्तक को निकालने में मैं कोई हर्ज नहीं समझता। इस पुस्तक के कुछ लेख "आज" तथा दूसरे पत्रों में समय समय पर निकल चुके हैं और कई ज़रियों से मालूम हुआ कि पाठकों को वे बहुत पसन्द आये हैं। इसलिये इन्हें पुस्तक स्वरूप में प्रकाशित करने का और भी अधिक साहस हुआ।

"शरीर रचना" और "साधारण रोग और उनके उपचार" नाम के दो अध्यायों को दारागंज प्रयाग-म्युनिसिपल डिसपेन्सरी के विद्वान् डाक्टर हमारे परम मित्र डाक्टर ब्रजबिहारी लाल साहब (Dr. Brij Behari Lal, B. Sc. M. B. B. S.) ने हमारी प्रार्थना पर लिखकर दिया है अतएव हम उक्त डाक्टर साहब के हृदय से अत्यन्त कृतज्ञ हैं। आप उन इन-गिने डाक्टरों में से हैं जिन्हें अपनी मातृभाषा हिन्दी से बड़ा प्रेम है और जो परोपकार बुद्धि से सदैव जन साधारण की सेवा करने के लिये तत्पर रहते हैं। "मादक द्रव्य" पर हमारे दूसरे मित्र पं० गणेश पाण्डेय ने अध्याय लिखकर दिया है अतएव ये सज्जन भी धन्यवाद के पात्र हैं। इसके अतिरिक्त हम 'आज' पत्र के सुयोग्य सम्पादक श्रीमान् पं० बाबूराव विष्णुजी पराड़कर के प्रति भी अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट किये बिना नहीं रह सकते जिन्होंने हमारी प्रार्थना पर अपने अमूल्य समय का कुछ भाग निकालकर इस पुस्तक के लिये प्रस्तावना लिखने का कष्ट उठाया है।

हमारी पुस्तकमाला से प्रकाशित "ब्रह्मचर्य ही जीवन है" नामक पुस्तक की तरह यदि इस पुस्तक से भी जन साधारण और विशेषतः विद्यार्थियों को स्वस्थ्य बनाने एवं दीर्घजीवी बनने में सहायता मिली तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

केदारनाथ गुप्त

हम सौ वर्ष कैसे जीवें

१—हमारा शरीर और उसकी रचना

मनुष्य के शरीर की तुलना एक बड़ी पेचीली मशीन से की जा सकती है। जिस प्रकार मशीन बहुत से कल और पुर्ज़ों से मिलकर बनती है, उन्हीं के एकत्र काम करने से पूरी मशीन काम करती है, इसी प्रकार हमारा शरीर भिन्न भिन्न अङ्गों के समूह से बना है—यदि कोई अङ्ग किसी प्रकार ख़राब हो जाय—अथवा अपना काम करना छोड़ दे तो हमारे शरीर की सारी मशीन बिगड़ जाती है। जिस प्रकार मशीन को सुगमता से चलने के लिए—उसे बहुत दिनों तक काम लेने के योग्य रखने के लिए—उसके हर एक पुर्ज़े का साफ़ करना आवश्यक है, उसी तरह यदि हम अपने शरीर रूपी मशीन को ठीक रखना चाहें, उसे सौ वर्ष की आयु तक काम में लाना चाहें, तो हमें उसके अङ्ग-प्रत्यंग को साफ़ और ठीक रखना चाहिये। जिस प्रकार इंजिनियर इंजिन के कल पुर्ज़ों का पूरा ज्ञान रखता है, उसी प्रकार हमें भी इस मशीन को ठीक रखने के लिए इसके कल-पुर्ज़ों का ज्ञान रखना चाहिये। इसी से शरीर की बनावट के सम्बन्ध में संक्षिप्त में यहाँ कुछ लिखा जाता है।

मनुष्य का शरीर कई भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रत्येक विभाग कई अङ्गों से बना है। इन विभागों को

हमारे शरीर की रचना
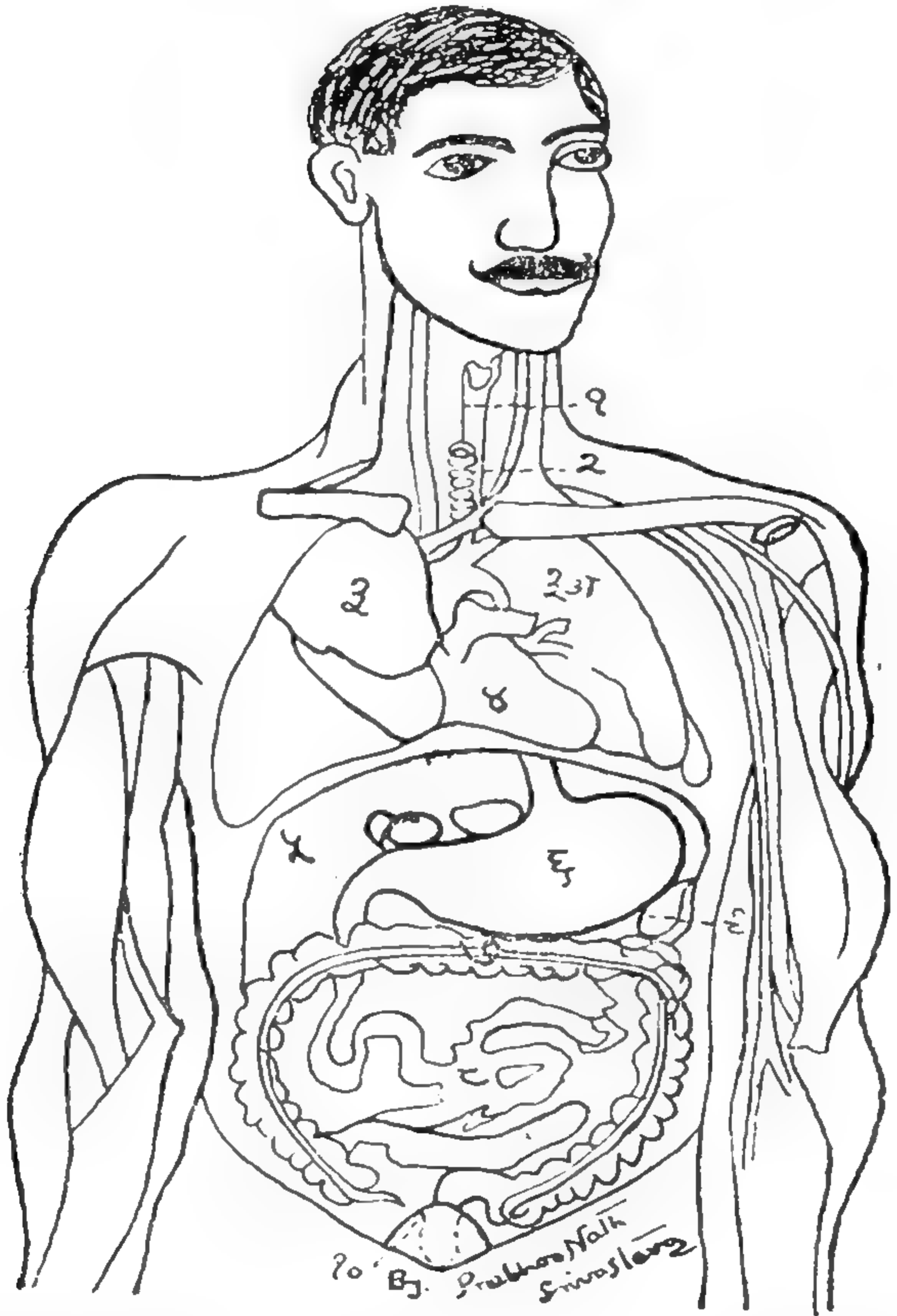
१. भोजन की नली
२. साँस लेने की नली
३. फुफ्फुस या फेफड़ा
३अ. दूसरा फेफड़ा
४. हृदय
५. यकृत या जिगर
६. आमाशय या मेदा
७. छोटी अँतड़ियाँ
८. बड़ी अँतड़ियाँ
९. तिल्ली
१०. मूत्राशय

System संस्थान कहते हैं। जिस प्रकार शरीर के कुछ अङ्ग मिलकर शरीर के पोषण का कार्य करते हैं—अर्थात् जिन अङ्गों द्वारा भोजन पचता है तथा शरीर के आवश्यक आवश्यक पदार्थ ग्रहण किये जाते हैं—उस विभाग को पोषण संस्थान कहते हैं। वैसे ही और दूसरे संस्थान हैं। शरीर निम्न-लिखित विभागों (संस्थानों) में विभाजित है:—

(१) आधार संस्थान (२) प्रेरक संस्थान
(३) वात संस्थान (४) मल-मूत्र-वाहक संस्थान
(५) श्वासोच्छ्वास संस्थान (६) रक्त और रक्तवाहक संस्थान
(७) उत्पादक संस्थान (८) विशेष ज्ञानेन्द्रिय संस्थान
(९) पोषण संस्थान

---

(१) आधार संस्थान

यदि हम शरीर से कोमल अङ्गों—जैसे खाल, मांस, त्वचा इत्यादि—को गलाकर या काटछाँट कर शरीर से निकाल दें तो केवल हड्डियों का साँचा मात्र बाक़ी रह जायगा। यह ढाँचा बहुत सी हड्डियों के द्वारा बना है। इस ढाँचे को अस्थि-पंजर भी कहते हैं। अस्थियों के कार्य-(१) अस्थियों से शरीर में दृढ़ता आती है। यदि मनुष्य के शरीर में अस्थियाँ न होतीं तो मनुष्य का शरीर मांस के एक लोथड़े के समान होता; उसमें हाथ, पैर इत्यादि आकार मात्र भी न होते। (२) अस्थियाँ कोमल अङ्गों को सहारा देती हैं और उनकी रक्षा करती हैं। जैसे हमारे फुफ्फुस (फेफड़े) की रक्षा के लिए पसलियों और पीठ की कुछ हड्डियों को मिला कर एक डिब्बा बनाया गया है। (३) अस्थियों ही के सहारे हम अपने शरीर को हिला सकते हैं, क्योंकि

अधिकतर मांस, जिससे शरीर की गतियाँ होती हैं; इन्हीं अस्थियों में लगा रहता है।

मनुष्य के शरीर में छोटी बड़ी सब मिलाकर २०६ हड्डियाँ हैं, इनमें स्त्री और पुरुष में कोई अन्तर नहीं होता है। पंजर के ये भाग हैं:—

(१) खोपड़ी--यह २२ हड्डियों से बनी है, जिनमें से ४ अस्थियाँ केवल चेहरे को बनाती हैं, शेष ८ अस्थियों से मिलकर एक डिब्बा बनता है. जिसके अन्दर मस्तिष्क सुरक्षित रहता है जो कि वात-संस्थान का मुख्य अङ्ग है।

(२) रीढ़—यह ३३ अस्थियों से मिलकर बनी है। इनमें से नीचे की ९ अस्थियाँ मिलकर दो बड़ी अस्थियाँ बनती हैं। इन्हें त्रिक Sacrum) और पुच्छ अस्थि (Coccyx) कहते हैं। रीढ़ की सारी हड्डियों से मिलकर एक नली बनती है जिसके अन्दर मस्तिष्क के नीचे का मोटा सूत रहता है।

पसलियाँ—यह बारह एक एक ओर रहती हैं। ये पीछे रीढ़ की हड्डियों से और आगे (Sternum) स्टर्नम से जुड़ी रहती हैं। इसके अन्दर शरीर के मुख्य अङ्ग हृदय, फुफ्फुस इत्यादि रहते हैं।

(३) उर्ध्व शाखाएँ—इनमें प्रत्येक शाखा में ३२ अस्थियाँ हैं। दोनों में मिलकर ६४ हैं। ये नीचे लिखी हुई हड्डियों से मिलकर बनी होती हैं:—

(१) हँसुली (२) स्कन्ध (३) बाहु की एक हड्डी; अग्रबाहु की दो (४) कलही या पहुँचे की आठ छोटी छोटी अस्थियाँ (५) हथेली की पाँच हड्डियाँ और अँगुलियों की १४।

(४) निम्न शाखायें—इनमें प्रत्येक में ३१ हड्डियाँ होती हैं। वे नीचे लिखी हुई हड्डियों से मिलकर बनी हैं:—

नितम्ब या कूल्हे की एक; जंघे की एक. टाँग की दो, टखने या एड़ी की सात, पैर की पाँच, अँगुलियों की चौदह। जाँघ और पैर की अस्थियाँ जहाँ पर मिलती हैं, वहाँ पर एक छोटी सी तिकोनियाँ हड्डी होती है, उसे पाली या पटेला (Patella) कहते हैं।

---

(२) प्रेरक संस्थान

मांस शरीर के प्रत्येक भाग में रहता है और इसी के सहारे से शरीर में भिन्न भिन्न प्रकार की गतियाँ हुआ करती हैं। चलना-फिरना, हाथ हिलना तथा खाना-पीना ये सब काम मांस ही के द्वारा होते हैं।

शरीर में मांस की गतियाँ दो प्रकार की होती हैं:—

(१) एक प्रकार की गति वह है जो हमारी इच्छा के अधीन है। इसे हम इच्छाधीन गति कह सकते हैं। यदि हम हाथ हिलाना चाहें, तो हिला सकते हैं। यदि इच्छा न हो तो उसका हिलाना बन्द कर सकते हैं, इस प्रकार की गतियाँ जिस मांस से होती हैं उसको इच्छाधीन मांस कहते हैं।

(२) दूसरे प्रकार की गति वह है जो पूर्णरूप से स्वाधीन है और हमारी इच्छा वा अनिच्छा का कोई प्रभाव उन पर नहीं पड़ता। यह सबको विदित है कि हृदय में सर्वदा धड़कन हुआ करती है। यदि हम चाहें कि यह धड़कन एक मिनट के लिये भी बन्द हो जाय तो असम्भव है। इस प्रकार की गति जिस मांस के द्वारा होती है, उसको स्वाधीन मांस कहते हैं।

मांस की वृद्धि व्यायाम इत्यादि करने से होती है, यदि इनसे काम न लिया जाय तो ये क्षीण हो जाते हैं।

---

(३) वात संस्थान

यह नीचे लिखे हुए अङ्गों से मिल कर बना है :—

(१) मस्तिष्क (२) मस्तिष्क के नीचे मोटा वात सूत (Spinal corb) (३) वात रज्जुयें।

यह संस्थान शरीर का एक प्रधान संस्थान है; क्योंकि इसका प्रधान अङ्ग मस्तिष्क ही सारे शरीर पर शासन करता है। मस्तिष्क एक बहुत बड़ा पेचदार अङ्ग है। इसके मुख्य दो भाग हैं—एक अगला जिसको सेरिब्रम (Cerebrum) कहते हैं, और दूसरा पिछला जिसको सेरीबेलम (Cerebellum) कहते हैं। मस्तिष्क से बारह जोड़ो रज्जुयें निकली हैं। जो कि विशेष ज्ञान-इन्द्रियों की तरफ़ जाती हैं और जिनसे वे ज्ञान-इन्द्रियाँ अपना अपना काम करती हैं। मस्तिष्क ही शरीर का राजा है। जिस प्रकार राजा अपने कर्मचारियों को आज्ञा देकर अपने राज्य का सारा कार्य सुगमता से चलाया करता है, उसी प्रकार हमारे शरीर रूपी राज्य का कार्य मस्तिष्क रूपी राजा की आज्ञा से चलता है। इसमें एक गुण है जिससे वह हर प्रकार के कार्यों को समझता और उसी के अनुसार आज्ञा देता है! मान लीजिये, किसी की अच्छी वस्तु पड़ी हुई है, उसको देखकर उसे लेने की इच्छा या अनिच्छा का होना हमारे मस्तिष्क ही पर निर्भर करता है। यदि हमारा मस्तिष्क स्वाध्याय संस्कार आदि से शुद्ध तथा पवित्र है तो वह फ़ौरन आज्ञा देता है कि तुम दूसरे की वस्तु मत उठाओ और हाथ

उसको उठाने से इन्कार करेंगे। इस कारण मस्तिष्क को शुद्ध तथा पवित्र रखना आवश्यक है। यह जो हम देखते, सुनते सूँघते हैं, ये सब कार्य वास्तव में मस्तिष्क ही करता है। यह सुनकर लोगों को आश्चर्य होगा कि देखते तो हम हैं आँखों से, सुनते हैं कानों से और स्वाद लेते हैं जिह्वा से, तो फिर इनमें मस्तिष्क का क्या कार्य है? परन्तु नहीं, जैसा कि हम ऊपर बतला चुके हैं—मस्तिष्क के दोनों ओर से १२ जोड़ी वात रज्जुयें निकल कर विशेष ज्ञानेन्द्रियों में जाती हैं और इन्हीं के द्वारा देखने, सुनने, सूँघने तथा स्वांस लेने का आभास मस्तिष्क में पहुँचता है और वहाँ उस पर तर्क-वितर्क होता है। यदि मस्तिष्क अथवा वात रज्जुयें बिगड़ जायँ तो ज्ञानेन्द्रियों के ठीक रहते हुये भी उनके कार्य का आभास नहीं हो सकता। इसी प्रकार वे वात रज्जुयें जो हमारे हृदय को जाती हैं, काट दी जायँ तो हमारे दिल का चलना बन्द हो जाय। इन सब बातों से स्पष्ट है कि मस्तिष्क ही सारे शरीर का राजा है।

(२) मस्तिष्क के नीचे का वात सूत्र (Spinal cord) लगभग १७ इं० लम्बा और आधा इंच चौड़ा है। यह शिर के नीचे से लेकर कमर तक रीढ़ की हड्डियों के बीच में रहता है। साधारणतः इसको वात रज्जुओं का समूह समझना चाहिये। समस्त वात रज्जुयें जो कि हमारे सारे अङ्गों, प्रत्यंगों में फैली हुई हैं, सब इसी मोटी वात रज्जु में होकर आती जाती हैं।

(३) वात सूत्रिकायें या छोटी छोटी वात रज्जुयें—ये कई प्रकार की होती हैं। कुछ का कार्य शरीर के अङ्गों से मस्तिष्क

को आज्ञा का ले जाना और कुछ का कार्य मस्तिष्क से शरीर को आज्ञा ले आना है। उदाहरणार्थ यदि हम किसी को चुटकी काटें तो वह अपने हाथ सिकोड़ लेता है। चुटकी लेने के ज्ञान का आभास एक प्रकार के वात रज्जु द्वारा हमारे मस्तिष्क रूपी राजा के पास पहुँचता है। तब हमको ज्ञान होता है कि चुटकी काटी गई। उसी समय वह दूसरे प्रकार के वात रज्जु द्वारा यह आज्ञा देता है कि तुम तुरंत हाथ खींच लो, तब हम अपना हाथ शीघ्रता से खींच लेते हैं।

---

(४) मूत्र-वाहक संस्थान

इस संस्थान के मुख्य अङ्ग (१) गुरदे, (२) मूत्र नाली (३) मूत्राशय और मूत्र मार्ग हैं।

(१) गुरदे—इनका मुख्य काम मूत्र बनाने का है। यह शरीर में एक दाहिने ओर और एक बायें ओर बारहवीं पसली के पीछे रीढ़ की हड्डी के दोनों ओर लगे हुये होते हैं। हर एक गुर्दे की लम्बाई चार इञ्च, चौड़ाई २½ इञ्च, ऊँचाई १ इंच होती है। इसका वज़न २ छटाँक के लगभग होता है। इसकी बनावट सेम के बीज के समान होती है। गुरदा वास्तव में अनेक पतली पतली बहुत लम्बी नलियों का समूह है। इन्हीं नलियों द्वारा गुरदे के भीतर रक्त के निकम्मे पदार्थ यूरिक, यूरिक एसिड इत्यादि निकल कर मूत्र बनते हैं। यही मूत्र इन पतली पतली नलियों में बहता हुआ बड़ी बड़ी नलियों में पहुँचता है और फिर वहाँ से छोटे छोटे छिद्रों द्वारा मूत्र प्रणाली के ऊपर चौड़े भाग में पहुँचता है।

(२) मूत्र प्रणाली दो हैं जो कि दोनों ओर गुरदों के नीचे भाग से निकल कर मूत्राशय से जुड़ी रहती हैं। इन्हीं प्रणालियों द्वारा, गुरदों द्वारा बना हुआ मूत्र मूत्राशय में पहुँचता है। मूत्र प्रणाली ही में कभी कभी पथरी के रोगियों की पथरी अटक जाती है, जिससे रोगियों को अत्यन्त पीड़ा होती है।

(३) मूत्राशय—इसी थैली में आकर मूत्र इकट्ठा हुआ करता है। यह पेड़ू में रहता है। पुरुषों में इसके पीछे दो मूत्राशय होते हैं जिनके अन्दर वीर्य होता है और स्त्रियों में इसके पीछे गर्भाशय होता है। मूत्राशय खाली होने पर त्रिकोणाकार होता है, परन्तु मूत्र से भर जाने पर गोलाकार हो जाता है।

(४) मूत्र-मार्ग—मूत्राशय के सब से नीचे के भाग से एक और नाली का आरम्भ होता है और इसी को मूत्र-मार्ग कहते हैं। ये स्त्री और पुरुष, दोनों में समान नहीं होते।

पुरुष में इस नली की लम्बाई ७ अथवा ८ इं० के लगभग होती है। पहले एक अथवा १½ इञ्च छोड़कर शेष नली लिंग के नीचे के भाग में होती है। लिंग मुण्ड या सुपारी में जो छिद्र होता है वह नली का छिद्र है। इसी से शुक्र भी निकलता है। स्त्रियों में मूत्र-मार्ग की लम्बाई केवल २½ इञ्च होती है। यह नली योनि के सामने दीवार से जुड़ी होती है। इसका छिद्र योनि के सब से बड़े छिद्र से भिन्न है और उससे आधे इञ्च ऊपर होता है।

मूत्र

स्वस्थ मनुष्य २४ घंटे में १½ सेर के लगभग मूत्र त्याग करता है। गर्मी में कम और जाड़े में अधिक होता है मूत्र का रङ्ग हल्का गेहूँ के तिनके के रङ्ग के समान होता है। ज्वर में यह पीला अथवा लाली लिये हुए होता है। डेढ़ सेर मूत्र में कोई एक सेर सात छटाँक जल होता है। शेष एक छटाँक वह पदार्थ होते हैं जो उस जल में घुले होते हैं। ये कई प्रकार के लवण होते हैं, जिनमें यूरिया होता है। मधुमेह रोग में मूत्र में चीनी निकलने लगती है और मूत्र की मात्रा भी अधिक बढ़ जाती है।

श्वासोच्छ्वास संस्थान

साँस लेने का कार्य दो भागों में विभाजित है—(१) एक बार वायु नाक में से लेकर फेफड़ों के भीतर प्रवेश करती है। यह उच्छ्वास या अन्तःश्वसन है अथवा साँस को भीतर प्रवेश करना है। (२) फिर वायु नासिका से बाहर निकलती है। इसको प्रश्वास, वहिश्वसन या साँस का बाहर निकलना कहते हैं। एक बार श्वास भीतर ले जाने तथा बाहर निकालने से एक श्वास-कर्म पूरा होता है एक प्रौढ़ मनुष्य एक मिनट में १८ बार साँस लेता है। किसी किसी रोग में—जैसे निमोनिया में यह श्वास बहुत जल्दी जल्दी चलने लगती है। यहाँ तक कि एक मिनट में ६७-७० बार चलती है।

उच्छ्वास

जब साँस अन्दर जाती है तो छाती फैलकर पहले बड़ी हो

जाती है। ज्यों ज्यों छाती फैलती जाती है, वायु फेफड़ों में घुसती है और सम्पूर्ण फेफड़ों का परिमाण पहले की अपेक्षा अधिक हो जाता है। श्वाँस लेने में वायु फेफड़ों के भीतर जाती है तो फेफड़े के अन्दर आये हुए विकार रुधिर से कारबोनिक ऐसिड गैस—जिससे कि वह रक्त परिपूर्ण रहता है—ले लेती है। साथ ही अपना आक्सिजन गैस उसको दे देती है जिससे वह रक्त शुद्ध होकर शरीर के अन्दर जाता है।

फेफड़ों की बनावट

फुप्फुस या फेफड़े—अनेक छोटे छोटे अंश होते हैं जो आपस में जुड़े रहते हैं। इस अंश से एक सूक्ष्म वायु प्रणाली लगी हुई रहती है। यह कई कोठरियों से सम्बन्ध रखती है जिनको वायुमंदिर कहते हैं, ऐसे ऐसे सहस्रों अंशों से फेफड़ा बनता है।

(६) रक्त और रक्त वाहक संस्थान

रक्त—जब हमारे शरीर में किसी प्रकार चोट लगती है और खाल छिल जाती है, उस स्थान से जो लाल लाल पदार्थ बह निकलता है, उसे रक्त कहते हैं। रक्त के द्वारा हमारे समस्त शरीर का पोषण होता है। इसका स्वाद कुछ कुछ नमकीन होता है। शरीर से निकलने के पश्चात् रक्त पतला नहीं रहता, बल्कि शीघ्र जम जाता है। रक्त के मुख्य दो भाग हैं—(१) पानी का ऐसा पतला भाग जिसको प्लाज्मा कहते हैं—(यदि हम थोड़े से रक्त को किसी बर्तन में रख दें तो

कुछ समय के पश्चात् कुछ हलका पीलापन लिये हुये पानी का सा पदार्थ अलग हो जाता है यही रक्त का प्लाज़्मा है)। (२) जमा हुआ लाल भाग बहुत से कणों से मिलकर बनता है। जिनको रक्त-कण कहते हैं। समस्त शरीर में शरीर के भार का $\frac{१}{२०}$ अंश रक्त होता है। यदि किसी मनुष्य के शरीर का वज़न डेढ़ मन है तो उसके शरीर में ३ सेर रक्त होगा। रक्त-कण तीन प्रकार के होते हैं—(१) लाल रक्त-कण (२) श्वेत रक्त-कण (३) सूक्ष्म रक्त-कण।

(१) लाल रक्त-कण—इनकी संख्या श्वेत रक्त-कणों से बहुत अधिक होती है। ये केवल अणुवीक्षण यंत्र द्वारा ही देखे जा सकते हैं, क्योंकि इनका असली आकार बहुत छोटा होता है। प्रत्येक कण की मुटाई $\frac{१}{१२०००}$ इञ्च और चौड़ाई अथवा लम्बाई $\frac{१}{३२००}$ इञ्च होती है। यदि एक बूँद रक्त अणुवीक्षण यंत्र के नीचे रखकर देखें तो लाल श्वेत तथा सूक्ष्म रक्त-कण साफ़ साफ़ दिखाई देंगे। एक जवान मनुष्य के शरीर में डेढ़ अथवा दो पद्म के लगभग कण होते हैं। इन कणों के घट जाने से—जैसा कि जूड़ी बुखार में होता है, जिनमें जूड़ी के कीड़े इन लाल कणों को खा जाते हैं—रक्त का रङ्ग पीला पड़ जाता है और मनुष्य का रङ्ग पीला दीख पड़ता है।

(२) श्वेत रक्त-कण—यह रक्त-कण से बड़े होते हैं। इनकी लम्बाई $\frac{१}{२५००}$ इञ्च के लगभग होती है। शरीर में इनका और लाल कणों का सम्बन्ध १ और ६०० का होता है। ये भी केवल अणुवीक्षण यंत्र द्वारा ही देखे जा सकते हैं। यह जीवित अवस्था में सदा अपना आकार बदला करते हैं। कभी गोल, कभी लम्बे और कभी तिकोनियाँ हो जाते हैं। यह चार

पाँच प्रकार के होते हैं। इनमें रोगों के कीड़ों से लड़ने, मारने तथा खाने की बहुत शक्ति होती है। जब यह स्वयं मर जाते हैं तो मवाद बन जाते हैं।

(३) सूक्ष्म रक्त-कण—यह भी लाल अथवा श्वेत कण के समान रक्त में मिले रहते हैं। अभी तक यह पता नहीं चला कि ये क्या कार्य करते हैं।

रक्तवाहक संस्थान—इस संस्थान के मुख्य अंग हृदय और रक्त-नालियाँ हैं।

हृदय—यह शरीर में एक पंपिंग इंजिन है जो बिला एक सेकण्ड के रुके हुए सदा ख़राब रक्त को लेकर तथा फेफड़ों से आये हुये शुद्ध रक्त को सारे शरीर में रक्त-नालियों द्वारा पंप किया करता है। इसका आकार तिकोना है। इसके मांस में सदा फड़कने का स्वाभाविक गुण है। इसके चार भाग हैं। दो भाग बायें तरफ़ और दो दाहिने तरफ़ होते हैं। दाहिने तरफ़ के दोनों भागों के बीच में एक किवाड़-सा लगा रहता है। इसी तरह बाईं तरफ़ के दोनों भाग मिले हैं। इन किवाड़ों की बनावट बड़ी विचित्र होती है। यह रक्त को एक भाग से दूसरे भाग में जाने देते हैं; किन्तु दूसरे भाग से पहले भाग में नहीं आने देते।

रक्त-नलियाँ—दो प्रकार की होती हैं—एक मोटी दीवार वाली जिनको धमनी कहते हैं—इनके अन्दर रक्त हृदय से शरीर के अंगों में दौड़ा करता है। दूसरा पतली दीवारवाली जिनको सिरा कहते हैं इनमें ख़राब काला रक्त शरीर के अंगों से हृदय की ओर दौड़ा करता है।

हृदय का कार्य—रक्त शरीर के सब अंगों को आवश्यक वस्तुयें देकर दो बड़ी शिराओं द्वारा हृदय के दाहिने भाग के ऊपर वाले कमरे में आता है। जब यह कमरा भर जाता है तो यह सिकुड़ने लगता है और नीचे वाले कमरे के बीच वाले किवाड़ खुल जाते हैं और रक्त नीचे वाले कमरे में आ जाता है। ज्योंही रक्त दाहिने ओर के नीचे वाले कमरे में आता है, कपाट शीघ्र बन्द हो जाते हैं जिससे रक्त लौटकर ऊपर वाले कमरे में नहीं जा सकता। नीचे वाले कमरे से एक मोटी धमनी फेफड़े की ओर जाती है—इसी धमनी द्वारा नीचे के कमरे में भरा हुआ रक्त फेफड़ों में पहुँचता है। फुफ्फुस में रक्त शुद्ध होकर चार बड़ी शिराओं द्वारा हृदय की बाँयीं ओर वाले कमरे में आता है। जब यह कमरा भर जाता है तब इसके बीच के किवाड़ खुल जाते हैं और रक्त बाईं ओर के नीचे वाले कमरे में आता है। किवाड़ उसी प्रकार बन्द हो जाते हैं और रक्त ऊपर वाले कमरे में नहीं लौट सकता। नीचे वाले कमरे से रक्त एक बड़ी मोटी धमनी तथा उनकी शाखाओं द्वारा शरीर के अङ्ग प्रत्यंग में पहुँचता है। ये सारे कार्य एक आरोग्य मनुष्य में एक मिनट में ७२ बार होते हैं। प्रौढ़ मनुष्य का हृदय एक मिनट में ७२ से लेकर ८० बार धड़कता है। बाल्यावस्था में संख्या पहले से कुछ अधिक हो जाती है। ज्वर, दौड़ने तथा मिहनत आदि करने से हृदय की गति बहुत अधिक हो जाती है। कभी कभी हृदय की गति बहुत मन्द भी हो जाती है। जैसे भूखा रहने, कमज़ोर हो जाने आदि से कभी कभी एक-बारगी शोक-जनक या बहुत हर्षपूर्ण समाचार के सुनने से भी हृदय की गति भी मन्द पड़ जाती है। यहाँ तक कि कभी कभी बन्द हो जाती है और मनुष्य की मृत्यु भी हो जाती है।

(६) पोषण संस्थान

इस संस्थान द्वारा मनुष्य भोजन को ग्रहण करके और उसके गुणकारक पदार्थों को लेकर शेष बेकाम भाग को मल के रूप में त्याग देता है। इस संस्थान के भाग ये हैं:—(१) मुँह तथा उसके अन्दर के दाँत, जीभ और लार। (२) मुँह और पेट के बीच की नली, जिसको अन्न-प्रणाली भी कहते हैं। (३) आमाशय अर्थात् मेदा (४) छोटी बड़ी आँतें (५) यकृत (जिगर) पैंक्र उनास या क्लोम (६) मलद्वार अथवा एनेस।

मुख—यह पोषण-संस्थान का पहला भाग है। इसके सारे भाग पोषण-संस्थान में नहीं काम करते; केवल दाँत, जीभ और लार ग्रन्थियाँ ही काम में आती हैं।

दाँत—दो प्रकार के होते हैं:—(१) दूध के दाँत (२) असली दाँत (१) दूध के दाँत लगभग छः मास की आयु से निकलने लगते हैं और, १२-१३ वर्ष की अवस्था तक गिर जाते हैं। संख्या में केवल २० होते हैं। असली दाँत ३२ होते हैं। सब से पिछले चार दाँत, जिसको अकिल-दढ़िया कहते हैं, १७ वष से २५ वर्ष की अवस्था के बीच में निकलते हैं। कभी कभी यह ३० वर्ष की अवस्था तक नहीं निकलते। इन दाँतों में भी कई विभाग हैं--जैसे सामने के काटने के लिये और पीछे की डाढ़ें चबाने के लिये होती हैं। दाँतों का कार्य भोजन चबा चबा कर पतला करना है। जितना ही भोजन अधिक चबाया जाता है, उतना ही अधिक पचता है। कहते हैं मिस्टर ग्लैडस्टन जो इङ्गलैण्ड के प्रध न

मंत्री थे, और बहुत बूढ़े होकर मरे हैं, एक ग्रास को ९० बार चबाकर खाया करते थे। इनको रोज़ मंजन या नीम की दातून से साफ़ रखना चाहिये।

जिह्वा या जीभ—यह केवल मांस ही की बनी होती है। और पीछे मांस द्वारा इस प्रकार जुड़ी होती है कि मुँह के अन्दर हर प्रकार से हिलाई जा सकती है। यह ग्रास को मुँह में चारों तरफ़ फिराती है जिससे ग्रास मुख के भीतर इधर उधर घूमकर लार से अच्छी तरह से मिल जाता है। इससे निगलने में भी अच्छी सहायता मिलती है। जीभ के ऊपर जो छोटे छोटे दाने दिखलाई पड़ते हैं और जिनके कारण जीभ खुरदरी रहती है, उनको (Papillae) कहते हैं। इन पपलियों के द्वारा हमको भोजन का स्वाद भी मिलता है। जीभ के सामने वाले भाग तथा किनारों से मीठा का स्वाद मिलता और जीभ से पीछे वाले भाग से कड़वा चीज़ का स्वाद ज्ञात होता है। जिह्वा से बोलने में भी बहुत मदद मिलती है। बिना जिह्वा के शुद्ध बोलना असम्भव है।

लार और लार ग्रन्थियाँ—लार-ग्रन्थियों में जिनसे लार बनती है, तीन जोड़े होते हैं—एक जोड़ जीभ के नीचे दोनों लगाम के दोनों ओर रहते हैं, दूसरा जोड़ जबड़े के नीचे दोनों ओर रहते हैं और तीसरा जोड़, कान के सामने गालों के ऊपर दोनों ओर होते हैं। इनमें लार पैदा होकर नलियों के द्वारा मुँह के अन्दर आया करती है।

जब मुख में ग्रास आता है तो उसी समय अधिक मात्रा में मुँह में लार आने लगती है। कभी कभी अच्छे भोज्य

पदार्थों को ही देखकर मुँह में लार आती है। लार में एक वस्तु होती है जिसको (ptyalin) टाईलिन कहते हैं। यह स्टार्ची-पदार्थों को जैसे चावल-रोटी आदि को तोड़ कर चीनी बनाती है। इसके कारण चबाया हुआ ग्रास सुगमता से निगला जा सकता है। क़रीब १० छटाँक के रोज़ लार बनती है।

भोजन प्रणाली या इसोफ़िगस—यह लगभग १० इञ्च के लम्बी होती है जो ऊपर मुँह से तथा नीचे आमाशय से मिली होती है।

(२) आमाशय—यह एक प्रकार की थैली है जो ऊपर चौड़ी और नीचे की ओर पतली होती है। इसके दोनों सिरे बहुत पतले होते हैं। खाना इसी के अन्दर आकर जमा होता है। इसके अन्दर की दीवार में एक प्रकार की छोटी छोटी ग्रन्थियाँ होती हैं, जिनसे एक प्रकार का रस पैदा होता है इसको गेस्ट्रिक जूस कहते हैं। यह रस नमक के तेज़ाब और पेपसिन से मिलकर बनता है। इसका कार्य आगे बताया जायगा।

(३) छोटी बड़ी आँतें आमाशय के नीचे वाले सिरे से आरम्भ होती हैं। यह लगभग ८ फ़ीट के लम्बी होती हैं। आमाशय के नीचे से १० इंच तक की छोटी आँत को डेनो-डिनम कहते हैं। इसके अन्दर भी छोटी छोटी ग्रन्थियाँ होती हैं। इन्हीं के अन्दर यकृत से बना हुआ पित्त और पैन्क्रियास में बना हुआ रस आता है। शेष नीचे की छोटी आँतों के हिस्से में रसों में मिला हुआ अन्न छोटी छोटी नलियों द्वारा सोख

कर तथा रक्त में मिल कर शरीर का पोषण करता है। छोटी आँतों के बाद बड़ी आँतें शुरू होती हैं—जो केवल ५ या ६ फ़ीट लम्बी होती हैं। बड़ी आँतों के सब से नीचे के हिस्से को मलद्वार कहते हैं।

(५) यकृत् अथवा जिगर—यह शरीर की दाहिनी ओर नीचे वाली पसलियों के पीछे और आमाशय के दाहिनी ओर होता है। इसका भार सवा सेर से दो सेर तक होता है। कभी कभी रोगों से यह घट बढ़ भी जाता है। इसके अन्दर पित्त बनता है जो छोटी छोटी नलियों द्वारा बड़ी नलियों में आता है और फिर एक बड़ी नली द्वारा पित्ताशय में जमा हो जाता है; यह ड्यूडनम में जाकर गिरता है और वहाँ भोजन पचाने के काम में आता है। इसका कार्य आगे चल कर बताया जायगा।

यकृत् के अन्दर चीनी के कण टूट कर एक प्रकार के द्रव्य के रूप में—जिसको अङ्गरेज़ी में ग्लाइकोजन कहते हैं—जमा रहते हैं और शरीर में चीनी की आवश्यकता पड़ने पर पुनः चीनी में परिवर्तित होकर शरीर की आवश्यकता को पूरा करते हैं। २४ घंटे में २० छटाँक के लगभग पित्त बनता है, जैसा ऊपर बताया जा चुका है। यह पित्त छोटी छोटी नलियों के द्वारा होता हुआ एक नली में जाता है। इसे अङ्गरेज़ी में (Bileduct) बाइलडक्ट कहते हैं। इसी नली में यह आमाशय के नीचे के भाग में एक छिद्र द्वारा बराबर आया करता है और पाचन प्रणाली में भाग लेता है। इसका वर्णन आगे किया जायगा।

जब कभी बाइलडक्ट में सूजन हो जाने के कारण उसका

मार्ग बन्द हो जाता है या किसी कारणवश वह छिद्र बन्द हो जाता है तो यही पित्त रक्त में लीन होकर कमल रोग पैदा कर देता है, जिससे मनुष्य का सारा शरीर पीला पड़ जाता है।

(५) क्लोम—(Pancreas) यह एक ग्रन्थि है जो आमाशय के नीचे पीठ से लगी होती है, इस ग्रन्थि का ज्ञान हम लोगों को बहुत कम है। यह एक विशेष ग्रन्थि है जो कि पाचन-प्रणाली में बहुत बड़ा भाग लेती है। इसकी लम्बाई लगभग ८ इञ्च और चौड़ाई लगभग ४ इञ्च है। इसमें दो प्रकार के रस बनते हैं—एक प्रकार का रस तो नलियों द्वारा आमाशय के नीचे के मार्ग में आया करता है और भोजन को पचाता है। दूसरे प्रकार का रस शरीर के अन्दर ज्यादा चीनी का बनना रोकता है। यदि क्लोम किसी कारण रोगग्रसित या नष्ट हो जाता है तो मनुष्य को मधुमेह का रोग हो जाता है।

तिल्ली बरवट (Spleen)—यह एक प्रकार की ग्रन्थि मनुष्य के शरीर के बाईं ओर पसली की हड्डियों के नीचे होता है। पाचन-प्रणाली में इसका कोई कार्य नहीं होता, यह रक्त की सफाई करती है और रक्त में आये हुए विष को मारती है। स्वस्थ अवस्था में यह २½ छटाँक वज़न में होती है। कुछ रोगों, जैसे जूड़ी का ज्वर, काल-ज्वर में, इसका आकार बहुत बढ़ जाता है। कभी कभी ५, ६ सेर के लगभग हो जाती है। ऐसी दशा में किसी प्रकार के ठोकर के लग जाने अथवा स्वयं अधिक परिश्रम करने से इसके फट जाने वा मृत्यु हो जाने का भय रहता है।

पाचन-प्रणाली—मनुष्य के भोज्य पदार्थ चार मुख्य भागों में विभाजित हैं (१)–प्रोटीन (Protein) जैसे दाल, मांस,

अण्डा इत्यादि, इसमें नेत्रजन का भाग अधिक होता है। (२) कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrate) जैसे चावल, गेहूँ, आलू, चीनी इत्यादि, इसमें नेत्रजन बिलकुल नहीं होता। (३) फैट (Fat) जैसे तेल, घी और मक्खन आदि। (४) साल्ट, लवण आदि। यह सब प्रकार के साग आदि में थोड़ा बहुत पाया जाता है। इन सब वस्तुओं का पचना भिन्न भिन्न प्रकार से भिन्न भिन्न रसों द्वारा होता है। जिस समय मनुष्य के मुँह में ग्रास जाता है, उसी समय से पचने का कार्य आरम्भ हो जाता है; जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, लार स्टार्ची पदार्थों को थोड़ा पचाना आरंभ कर देता है। यहाँ पर यह बतला देना ठीक होगा कि भोजन पचने का क्या अर्थ है। भोजन पचने का अर्थ यह है कि खाये हुए पदार्थ का ऐसे कणों में परिणत कर देना जिससे वह आसानी से रक्त में मिल जावे और शरीर के सारे भागों में पहुँच जावे और शेष भाग जो बच जावे वह मल के रूप में बाहर निकल जावे। जिस समय खाये हुए पदार्थ आमाशय में पहुँचते हैं, वहाँ पर वे आमाशय के रस से मिल जाते हैं। यह रस केवल प्रोटीन पदार्थों को जैसे मांस, मछली, दाल, अण्डे इत्यादि को पचाता है। यहाँ पर दूसरी किसी वस्तु का पचना नहीं होता। ये प्रोटीन पदार्थ छोटे छोटे कणों में टूट कर एक वस्तु में जिसको पेपटान और अमाइनो एसिड (Amino acid) कहते हैं—परिणत हो जाता है। इस अवस्था में यह सुगमता से रक्त में लीन हो जाता है। इसके अनन्तर जब अन्न आमाशय से निकल कर डुओ-डिनम में पहुँचता है तो वहाँ पर यह यकृत से आये पित्त से मिल जाता है। पित्त का कार्य चिकनी वस्तुओं जैसे घी, तेल, मक्खन, इत्यादि को तोड़ कर साबुन के रूप में परिणत

करना है। इस अवस्था में यह रक्त में मिल जाता है। यहीं पर क्लोम से आया रस भी अन्न से मिल जाता है। इस रस में तीन प्रकार की वस्तुयें होतीं हैं। एक वस्तु, जिसको अमाइलापसिन (Amylopsin) कहते हैं, विशेष रूप से स्टार्ची पदार्थों को तोड़कर चीनी अथवा शक्कर में परिणत करती है जो नलियों द्वारा यकृत में आती है और ग्लाइकोजन (Glycogen) के रूप में जमा रहती है और शरीर के आवश्यकतानुसार फिर चीनी में परिणत होती रहती है।

दूसरी वस्तु इस रस में (Steapsim) होती है जो पित्त से बचे हुए चिकने पदार्थों को साबुन के रूप में तोड़ती है।

तीसरी वस्तु (Trypsim) होती है जो आमाशय से बचे हुए प्रोटीन पदार्थों को तोड़कर पैपटोन्स और एमाइनो एसिड में परिणत करती है।

यहाँ पर पाचन का कार्य समाप्त हो जाता है और पचा हुआ अन्न आगे बढ़ता है और छोटी छोटी आँतों द्वारा रक्त में सोखता हुआ बड़ी आँतों में पहुँचता है। यहाँ पर यह केवल नल के रूप में रहता है और बाहर निकल जाता है। संक्षेप में यही पाचन-प्रणाली है।

२—प्रकृति और मनुष्य प्राणी

प्रकृति ने विश्व भर में जितनी रचनायें की हैं उन सबों में मनुष्य-देह सर्वोत्तम है। इसमें उसने अधिक बुद्धि भी खर्च की है। उसने इस देह को नीरोग और सशक्त रहने के लिए साधन भी उत्पन्न किये हैं। जो उनके अनुसार चलते हैं वे स्वस्थ रहते हैं और जो उनका उल्लंघन करते हैं वे दुखी और अल्प-जीवी होते हैं।

मनुष्य जब प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करता है तब भी वह उस पर दया का स्रोत बहाती है। भीतरी मल को फोड़े, फुन्सी, दस्त, कै, पेशाब, पाखाना आदि के द्वारा निकाल निकाल कर शरीर को स्वस्थ रखती है। यदि इन पदार्थों को भीतर से ज़बरदस्ती वह न निकाले तो मनुष्य बहुत दिन तक जीवित न रह सके।

शरीर और आत्मा भिन्न भिन्न हैं। आत्मा के जितने काम होते हैं वे सब शरीर के द्वारा होते हैं। शरीर को स्वस्थ रखने ही से आत्मा का काम भली भाँति संपादित हो सकता है। इस काम को संपादित करने के लिए प्रकृति ने शरीर में पहिले मस्तिष्क की अद्भुत रचना की है। इस मस्तिष्क में कितनी शक्ति भरी पड़ी है इसका अनुमान स्वयं मनुष्य तक को नहीं है। इस युग में अभी तो मस्तिष्क के थोड़े से भाग का उपयोग हुआ है। ज्यों ज्यों समय बीतता जायगा त्यों त्यों उसका विकास बराबर होता जायगा।

प्रकृति ने ज्ञान-तंतुओं द्वारा शरीर भर को मस्तिष्क के आधीन कर दिया है। मस्तिष्क जब शरीर के किसी अङ्ग से काम लेना चाहता है तो तंतुओं द्वारा आज्ञा भेजता है और तब वह उसका पालन करता है। इसी प्रकार शरीर के किसी अङ्ग को जब कोई कष्ट होता है तो वह अंग मस्तिष्क को सूचित करता है और मस्तिष्क उसकी दवा करता है।

शरीर को खड़ा रखने के लिए और उसे इधर उधर घूमने के लिए प्रकृति ने अस्थियों का समूह दिया है। दूसरे प्राणियों के साथ वार्तालाप करने के लिए व उनकी बातों को सुनने के लिए उसने जिह्वा और कान दिये हैं। शरीर भर के अंगों को पोषण देकर उन्हें सतेज और सशक्त रखने के लिए उसने हृदय की रचना की है जिससे धमनियाँ और रक्त के द्वारा पोषण द्रव्य शरीर भर को पहुँचता है।

रक्त की सफ़ाई के लिए प्रकृति ने फेफड़ों की रचना की है। फेफड़े साँस की नली द्वारा प्राणप्रद (Oxygen) वायु रक्त को देते हैं और रक्त की दूषित वायु (Carbonic Acid Gas) बाहर फेंकते रहते हैं। रक्त इस प्रकार बराबर शुद्ध होता रहता है। अन्न पचाने के लिए उसने पाचनालय भी बनाया है। प्रकृति की कारीगरी का वर्णन कहाँ तक किया जाय। उसने अपने सदृश दूसरे मनुष्य को पैदा करने की भी शक्ति शरीर को दे रक्खी है।

सूक्ष्म विचार करने से शरीर का रहस्य हमें और अधिक मालूम होगा और प्रकृति की सर्वज्ञता ज्ञात होगी। ज्यों ज्यों प्रकृति की कला पर हम गम्भीरतापूर्वक विचार करेंगे त्यों त्यों वह हमारी सहायता करेगी। ज्यों ज्यों हम उसके नियमानुसार अपने शरीर को रक्खेंगे त्यों त्यों शरीर स्वस्थ और दीर्घजीवी होता जायगा।

३—शुद्ध हवा

मनुष्य के शरीर को क़ायम रखने के लिए हवा, पानी और भोजन की अत्यन्त आवश्यकता है। भोजन और पानी के बिना यह कुछ दिनों तक जी भी सकता है किन्तु बिना हवा के वह एक घंटे भी जीवित नहीं रह सकता।

वास्तव में मनुष्य का मुख्य आहार हवा है जिसे वह नाक के द्वारा निरंतर सुड़का करता है। भोजन मनुष्य साधारण से भी साधारण करे; किन्तु यदि उसे स्वच्छ हवा बराबर मिलती रहे तो वह स्वस्थ रह सकता है। प्राचीन समय के ऋषि हवा को बहुत अधिक महत्व देते थे। सदैव खुली हवा में रहते थे और इसीलिए वे स्वस्थ रहा करते थे।

प्राचीन समय के गुरुकुल और ऋषिकुल भी आजकल के स्कूल और कालिजों की तरह नगर के भीतर नहीं रहा करते थे। वे बस्ती के दूरस्थ प्रदेशों में बनाये जाते थे। वहाँ रहने वाले ब्रह्मचारी खुली हवा में बैठकर विद्याध्ययन करते थे। उनका सब व्यापार खुली हवा में ही हुआ करता था। वे बलिष्ठ और दीर्घजीवी हुआ करते थे।

अब भी देखने में आता है कि जो लोग अच्छी हवा में रहते हैं उनका स्वास्थ्य ख़राब हवा में रहनेवालों से अच्छा होता है। हमारे ग्रामीण भाई सदैव स्वच्छ हवा में रहते हैं, उठते-बैठते, सोते-जागते, काम करते, खेलते, हमेशा उन्हें श्वास लेने के

लिये स्वच्छ हवा मिलती है। इसलिये वे हमारे नगर के भाइयों से अधिक स्वस्थ रहते हैं।

नगरों की हवा दूषित रहती है। नगर की जन-संख्या अधिक होने के कारण लोग अधिक परिमाण में कारबोनिक एसिड गैस निकालते रहते हैं। नगरों की दूकानें बड़ी गन्दी रहती हैं। दूकानदार सफ़ाई पर ध्यान नहीं देते। जिधर देखो उधर कूड़ा-कर्कट दिखाई पड़ता है। मिठाई और पूड़ी वालों की दूकान में भट्ठियाँ सुलगा करती हैं और उनका धुआँ वायु-मंडल को दूषित कर देता है।

नगर की गलियाँ बड़ी गन्दी रहती हैं। नालियों में घरों का पेशाब और पाखाना निरंतर बहता रहता है। नालियों के खुली रहने से दुर्गन्धि चारों ओर फैलती है। सड़कों की हालत भी अच्छी नहीं रहती। इनकी सफ़ाई केवल प्रातःकाल होती है। कहीं कहीं दूसरे समय भी नाम मात्र को हो जाया करती है; किन्तु इतनी सफ़ाई काफी नहीं होती। सड़कों में पानी का सिंचाव बहुत कम होता है। इसलिए इक्के, ताँगे, बग्घियों, गाड़ियों और मोटरों के चलने से ख़ूब धूल उड़ा करती है। विशेषकर मोटर तो धूल की लड़ी बनाती हुई जाया करती है। यह धूल हवा में मिल कर श्वास द्वारा मनुष्य के शरीर के भीतर जाती है, और बड़ी हानि पहुँचाती है।

गलियों की दशा बड़ी शोचनीय है। साल भर पाखाना और पेशाब से भरी रहती हैं। इतनी दुर्गन्धि निकलती है कि दो मिनट वहाँ खड़ा रहना कठिन हो जाता है। साल भर में उनकी सफ़ाई मुश्किल से एकबार होती है। बहुत सी गलियाँ तो

ऐसी देखने में आयी हैं जिनकी सफ़ाई पाँच-पाँच, सात-सात बरस तक नहीं हुई।

प्रत्येक शहर में म्युनिसिपैल्टी मौजूद है। हर एक वार्ड के मेम्बर भी उनमें रहते हैं। यदि वे ज़िम्मेदारी से काम करें तो शहर में गन्दगी लाने वाले कारण दूर हो सकते हैं। और शहरों की दूषित हवा अच्छी बनाई जा सकती है।

दूषित हवा में साँस लेने से मनुष्य का ख़ून ख़राब हो जाता है। उसके सिर में दर्द होने लगता है। शरीर भारी रहता है। उसकी पाचन-शक्ति बिगड़ जाती है। किसी काम में उसका चित्त नहीं लगता है। उसकी बुद्धि क्रमशः कुण्ठित हो जाती है। भूख कम हो जाती है और अन्त में उसको क्षय हो जाता है।

स्कूल और कालिजों में गवर्नमेंट शिक्षा-विभाग ने इसलिये हरएक लड़के के लिये स्थान नियत कर दिया है। जितने लड़कों को बैठने का एक कमरे में इस हिसाब से स्थान है उस कमरे में आवश्यकता से अधिक लड़के बैठ जाते हैं तो उनका चित्त घबड़ाने लगता है और पढ़ने-लिखने की ओर से उनका चित्त उचाट हो जाता है। वे नाना प्रकार के बहाने करने लगते हैं। जब बाहर चले जाते हैं और काफ़ी तादाद में उन्हें स्वच्छ हवा मिलती है तब उनके जान में जान आती है। अतएव स्वास्थ्य के अच्छा रखने के लिये दूषित हवा को छोड़ कर अच्छी हवा में रहने की नितान्त आवश्यकता है।

हमारे हिन्दुस्तानी अनपढ़े लोग हवा से बहुत डरते हैं। वे बच्चों को ख़ूब मूँद मूँद कर रखते हैं। लोग बीमार पड़ते हैं

तो चारों ओर किवाड़े बन्द करवा दिये जाते हैं और उस रोगी के कमरे में बहुत से स्त्री-पुरुष रोगी की देख-रेख में बैठ जाते हैं। स्वच्छ हवा और प्रकाश न आने से उस कमरे की हवा ख़राब हो जाती है। उस कमरे में नव आगन्तुक को बड़ी बदबू मालूम होती है। परिणाम यह होता है कि मूँदने ढाँकने से लड़के न तो स्वस्थ्य रहते हैं और कमरे के बन्द रखने से न तो रोगी ही अच्छा होता है। प्रायः देखा गया है कि अच्छे होने की जगह स्वच्छ वायु के अभाव से रोगी मर जाते हैं।

हमारे पुराने घरों की ऐसी बनावट है कि उनके कमरे में चारों ओर से पर्याप्त खिड़कियाँ नहीं हैं। शिक्षा के प्रचार से पुराने घरों की सूरतें धीरे धीरे अब बदल रही हैं। और वे नवीन रंग के मकानों की श्रेणियों में लाए जा रहे हैं। किन्तु अब भी बहुत से बाबा आदम के समय के घर मोजूद हैं। उनके कमरे प्रकाश-रहित होते हैं, और हवा का निरन्तर आवागमन नहीं होता। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि उनके कमरे सब प्रकाशमय और हवादार करवा दिये जायँ।

नये घरों को बनवाते समय भी हमारे भाइयों को प्रकाश और हवा का पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिये। प्रकाश भी स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है जिस घर में सूर्य का प्रकाश नहीं जाता अथवा चिराग नहीं जलाया जाता उस घर से सड़ी हुई दुर्गन्धि निकलने लगती है। हमारे बहुत से पाठकों ने इसका अनुभव किया होगा। किसी एक पौधे को अँधेरे में रख दीजिए वह थोड़े दिनों में पीला पड़ जायगा, यही दशा अँधेरे में रहनेवाले लोगों की होती है।

अतएव नवीन घर बनवाते समय सफ़ाई (Sanitation) का पूरा पूरा ख़्याल रखना चाहिए। मकान के चारों ओर की भूमि खुश्क हो, नम न हो। बरसात में घर के चारों ओर पानी न रुका रहने पावे। मकान की कुर्सी ऊँची होनी चाहिए। मकान के हर कमरे ख़ूब हवादार हों और प्रकाशमय हों। सोने के कमरे से रसोई-घर दूर हो और रसोई-घर से पाखाना दूर बनवाया जाय। रसोई-घर से धुआँ निकलने के लिए ऊपर भोंपू लगवाया जाय। मकान के सामने यदि थोड़ी सी ज़मीन में एक छोटी सी फुलवाड़ी लगवा दी जाए तो और अच्छा है। मकान की बनावट के बारे में लिखने की इस कारण आवश्यकता पड़ गई कि परिस्थितियों का प्रभाव मकान की हवा पर विशेष रूप से पड़ता है। परिस्थितियाँ यदि ठीक रक्खी जायें तो प्रत्येक मकान की हवा स्वच्छ और स्वस्थ रह सकती है।

सोते समय मकान के सब किवाड़ खुले रहने चाहिये। ताकि स्वच्छ हवा का आवागमन बराबर जारी रहे। जब हम साँस लेते हैं तो अच्छी हवा नाक द्वारा फेफड़ों में जाती है और वह ख़राब ख़ून की गन्दगी लेकर नाक ही द्वारा बाहर निकल आती है। अतएव नाक से बाहर आनेवाली हवा गन्दी होती है। यदि कमरा बन्द रक्खा गया और उसमें बाहर की स्वच्छ हवा अधिक परिमाण में न आवे तो कमरे की हवा गन्दी हो जाएगी और उसी हवा में साँस लेने से हमारी तन्दुरुस्ती ख़राब हो जायगी।

इसी सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए मुँह ढाँप कर हमें नहीं सोना चाहिये। बहुत से लोगों की आदत होती है कि

जाड़े में विशेषकर वे मुँह ढाँप कर सोते हैं। गन्दी हवा ओढ़ने वाले वस्त्र के अन्दर भर जाती है और सोनेवाला उसी में साँस लेकर धीरे धीरे अपना स्वास्थ्य खराब कर डालता है।

साँस हमेशा नाक से लेना चाहिये, मुँह से नहीं। नाक में दोनों छिद्रों के भीतर परदे होते हैं ये छन्ने का काम करते हैं। जब हवा उनमें होकर फेफड़ों में जाती है तो उसकी गन्दगी उन्हीं में इस ओर रह जाती है यदि साँस मुँह से ली जाएगी तो हवा की गन्दगी के साथ फेफड़ों में चली जाएगी और उससे भारी हानि होगी।

ईश्वर की दी हुई हवा का प्रयोग पूर्ण रूप से करना चाहिये अँग्रेज और धनी लोग रुपये खर्च करके स्वच्छ वायु ही के लिए नैनीताल, अल्मोड़ा, मँसूरी, शिमला आदि स्थानों की सैर करते हैं और वहाँ कुछ दिनों तक रहते हैं। हर नगर और ग्राम के चारों ओर नैनीताल है। मनुष्यों को केवल नियम से उठकर प्रातः और सायंकाल वायु-सेवन करने की आवश्यकता भर है।

४–शुद्ध जल

हवा के बाद महत्व में नम्बर पानी का है। पौधे, वृक्ष, पशु, पक्षी, मनुष्य प्राणी बिना पानी के अधिक दिन तक जीवित नहीं रह सकते। पीने के लिए, नहाने के लिए, कपड़ा धोने के लिए, चौका-बर्तन करने के लिए, पानी की आवश्यकता पल पल में पड़ती है। शहरों की नालियों को रोज़ धोने के लिए, सड़कों के सिंचाव के लिए, बाग़-बग़ीचा हरा-भरा रखने के लिए, खेतों की सिंचाई के लिए पानी की आवश्यकता कुछ कम नहीं है। कहने का तात्पर्य यह है कि पौधे, वृक्ष, पशु, पक्षी, कीड़े, मकोड़े, मनुष्य प्राणी बिना पानी के अधिक दिन तक जीवित नहीं रह सकते।

अतएव पानी की सफ़ाई पर हमें विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। बीमारी के छोटे कीटाणु पानी के सहारे भी शरीर के भीतर जाकर नाना प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं। जिन घड़ों में पानी रक्खे जाते हैं वे रोज़ साफ़ किये जायँ और उनमें ताज़ा पानी साफ़ कपड़े से छान कर भरा जाय। घड़ों के मुँह को भी सदैव ढक कर रखना चाहिये ताकि बाहर की गर्द पानी में भीतर न जा सके।

प्रकृति हमें कई ज़रियों से पानी देती है। चश्मे, कुयें, तालाब, नदी, समुद्र आदि से पानी मिलता है।

चश्मों का पानी सबसे उत्तम होता है। ये प्रायः पहाड़ों में पाये जाते हैं। पहाड़ों पर रहनेवाले लोगों के स्वास्थ्य पर

हवा का प्रभाव तो पड़ता ही है; किन्तु पानी का भी प्रभाव कम नहीं पड़ता। पहाड़ के पानी का अनुभव अक्सर उन लोगों ने किया होगा जो सैर करने के लिये वर्ष में कुछ महीने अथवा दिनों के लिए पहाड़ों में जाते हैं। एक गिलास चश्मे का पानी पीते ही डकार आने लगती है और भीतर की पाचन-क्रिया अधिक उत्तेजित होकर भोजन को शीघ्र पचा देती है।

चश्मों से उतर कर पानी कुयें का है। भारतवर्ष के सब देहातों तथा कुछ शहरों में इसी का पानी पिया जाता है। कुओं की सफ़ाई रखने की आवश्यकता है। कुओं की जगत पक्की तथा ढालू हो ताकि गिराया हुआ पानी कुयें में न जाकर बाहर निकल जाय। कुयें पर कपड़े न पछाड़े जायँ और न वहाँ बैठ कर स्नान किया जाय; नहीं तो गन्दा पानी कुयें में जाकर उसके पानी को ख़राब कर देगा। कुयें के चारों ओर की ज़मीन पक्की कर दी जाय ताकि गन्दा पानी अगल बगल से रस रस कर उसमें न जाय। कुयें के समीप पशु न बाँधे जायँ और कुयें के ऊपर कोई वृक्ष न हो नहीं तो उसकी पत्तियाँ झड़ झड़ कर कुयें में गिर कर पानी को ख़राब कर देंगी।

शहरों में नदी का पानी पीने के काम में लाया जाता है। यह पानी बड़े बड़े तालाबों में इकट्ठा किया जाता है और फिर इसकी सफ़ाई की जाती है। साफ़ किया हुआ पानी नलों के द्वारा घर घर में पहुँचाया जाता है। नल का पानी साफ़ होता है अतएव पीने योग्य है; किन्तु जिन तालाबों में पानी इकट्ठा किया जाता है वहाँ विशेष सावधानी रखने की ज़रूरत है। नल के प्रचार से शहरों के कुएँ निकम्मे हो गये हैं अतएव उन का पानी पीने योग्य नहीं है।

जहाँ पर नल नहीं हैं वहाँ नदियों के पानी पीने में सफ़ाई का विशेष ध्यान रखना चाहिये। शहर भर की गन्दगी नदियों में गिराई जाती है। कुछ शहरों में पाखाना भी नदियों में गिराया जाता है। शहरों का गन्दा पानी भी नदियों में बहाया जाता है अतएव पानी को देख-भाल कर पीना चाहिये। म्यूनिसिपैलटियाँ यदि पाखाना नदियों में न डलवाया करें तो अच्छा है। पाख़ाने को खेतों में गड़वाने का प्रबन्ध हो तो और भी अधिक अच्छा है।

तालाबों का पानी भी लोग देहातों में इस्तेमाल करते हैं, पीने में नहीं किन्तु स्नान करने में। तालाब बँधे रहते हैं अतएव उनकी गन्दगी उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। लोगों के स्नान से उनमें मल इकट्ठा होता है; इसके अतिरिक्त सुअर और भैंस उनमें लोटा करते हैं और लोग किनारों में पाखाना फिरते हैं। अतएव ऐसे तालाबों का पानी कभी भी नहीं पीना चाहिये। उनमें स्नान भी न करना चाहिये।

लेखक ने सब प्रकार के पानी का प्रयोग किया है। उसने कुयें का, नदी का, चश्मे का और नल का पानी पिया है। वह तो सब से अधिक महत्व गंगाजल को देता है। केवल धार्मिक दृष्टि से ही नहीं; किन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से गंगाजल वह सर्वश्रेष्ठ मानता है। गंगाजल सब जगह उपलब्ध नहीं है अतएव कुयें के पानी को वह दूसरे नम्बर में रखता है। यदि कुयें का साफ़ पानी न मिले तो फिर नल का ही पानी पीने के काम में लाना चाहिये; किन्तु तालाब का पानी कभी न पीना चाहिये।

हम ऊपर कह चुके हैं कि पानी की सफ़ाई पर विशेष ध्यान रखना चाहिये। साधारणतया तो ऐसी आशा की जाती है कि नल, कुयें और चश्मों के पानी को म्यूनिसिपैलटियाँ स्वच्छ रखती हैं किन्तु यदि पानी की सफ़ाई में कुछ भी सन्देह हो तो निम्न-लिखित तरीकों से उसकी सफ़ाई कर सकते हैं।

(१) उबालकर—पानी १० मिनट तक खौलाकर और छान कर घड़ों में भर कर रख दीजिये। बीमारी के दिनों में विशेष-कर पानी उबालना गुणकारी है। इससे सब कीड़े मर जाते हैं और जल स्वच्छ हो जाता है।

(२) फिटकरी से—फिटकरी को एक छोटी सी डंडी में बाँधकर गन्दे पानी में ६, ७ बार घुमा दीजिये और पानी को एक घंटे ठहरा रहने दीजिये। सब गन्दगी नीचे जम जायगी और पानी स्वच्छ हो जायगा।

(३) Permanganate Pottasium (पोटेशियम) पानी के दूषण को दूर करने की सब से उत्तम वैज्ञानिक वस्तु है। इससे पानी का स्वाद कुछ बिगड़ जाता है; किन्तु जल बहुत ही लाभकारी है। बीमारी के दिनों में इसका प्रयोग तो अवश्य ही होना चाहिए।

प्लेग अथवा हैज़े के दिनों में इसे कुयें में डालकर उसके पानी की सफ़ाई करनी चाहिये।

पोटैशियम—कोई दवा नहीं है यह केवल खनिज पदार्थों के मिश्रण से बना है। कट्टर से कट्टर हिन्दू को इससे परहेज़ करने की आवश्यकता नहीं है। डोल भर पानी में २ आउन्स घोलकर कुयें में डाल दो। यदि कुयें का पानी लाल न हो तो और

पोटैशियम मिलाओ। यह २ आउंस से ८ आउंस तक काम में लाया जा सकता है। दो दिन के बाद फिर उस कुयें का पानी काम में लाओ।

(४) फेल्टरेशन—४ घड़ों से बालू और कोयले के द्वारा पानी की सफ़ाई की जाती है। इससे केवल साहब बहादुर हीं लाभ उठा सकते हैं, जन साधारण नहीं। अतएव जन साधारण को इसके द्वारा पानी साफ़ करने की आवश्यकता नहीं है इसमें ख़र्च बैठता है। और खटखट भी बहुत करनी पड़ती है।

ईश्वर के दिये हुये पानी का प्रचुर प्रयोग करना चाहिये। नहाने, कपड़े और बर्तन धोने, नालियों आदि के साफ़ करने में पानी की किफ़ायत नहीं करनी चाहिये। किफ़ायत करने से स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है।

———

५—भोजन प्रकार

जो भोजन इस समय प्रचलित हैं वे तीन भागों में बाँटे जा सकते हैं (१) फलाहार (२) अन्नाहार और (३) मांसाहार।

(१) फलाहार सब आहारों में श्रेष्ठ है। मनुष्य के शरीर की बनावट सब जानवरों की अपेक्षा बन्दर से अधिक मिलती जुलती है। जिस प्रकार के हाथ, पैर, मुँह, नाक, आँख इत्यादि बन्दर के होते हैं उसी प्रकार के सब अंग मनुष्य के भी होते हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि बन्दर के पूँछ होती है और मनुष्य के नहीं होती। डारविन साहब ने तो अपने विकासवाद में यहाँ तक कहा है कि मनुष्य-सृष्टि के प्रारम्भ में बन्दर था। बन्दर की पूँछ क्रमशः झड़ गयी और वह मनुष्य बन गया।

जिस पशु का जो आहार है उसके दाँत भी उसी आहार के अनुसार ईश्वर ने बनाये हैं। शेर आदि हिंसक जन्तुओं के कुछ दाँत बड़े बड़े और नोकीले होते हैं, अतएव उनका स्वाभाविक आहार मांस है। मनुष्य के दाँत ऐसे नहीं होते। उसके दाँत वैसे ही होते हैं जैसे बन्दर के। अब सोचने की बात है कि बन्दर का वास्तविक आहार क्या है।

बन्दर की स्त्री बन्दरिया बन्दर के लिए रोटी, दाल, भात पकवान नहीं बनाती। वे स्त्री-पुरुष सदैव जंगल में विहार करते हुए वृक्षों में निवास करते हैं और उन्हीं के फल खाते हैं। फल खाकर वे ऐसे स्वस्थ रहते हैं कि बीमार नहीं

पड़ते। अतएव इस तर्क से यही सिद्ध होता है कि मनुष्य का स्वाभाविक आहार फल है।

मनुष्य को छोड़ कर प्रकृति देवी की गोद में विचरण करने वाले अन्य पशु पक्षियों की ओर देखिये। वे कैसे मोहक और सुन्दर दिखलाई पड़ते हैं। उनके रंग-विरंगे पर, उनका मधुर और गम्भीर कण्ठ कैसा सुहावना और चित्ताकर्षक होता है। इसका कारण यही है कि वे फलाहार करते हैं। वे ही पशु-पक्षी जब बाँध कर घर में रखे जाते हैं तो वे कैसे बोदे और निस्तेज दिखलायी पड़ते हैं। पिंजड़े में रहनेवाला तोता तो इतना पंगु हो जाता है कि उड़ाने पर भी उड़ नहीं सकता। इसका कारण यह है कि मनुष्य के साथ रहने से उनके रहन-सहन और भोजन आदि अस्वाभाविक हो जाते हैं।

प्राचीन समय में अर्वाचीन सभ्यता के पूर्व, खुली हवा में गङ्गाजी के किनारे अथवा पहाड़ों की खोह में रहनेवाले बल्कलधारी ऋषि केवल फलाहार करते थे। और इसलिये सैकड़ों वर्ष जीवित रहते थे। आज जो वेद, उपनिषद्, शास्त्र, पुराण वर्तमान हैं वे उन्हीं दिमागों के स्मारक हैं जो फलाहार और योगाभ्यास से शुद्ध किये गये थे।

फलाहार* के महत्व को पाश्चात्य देशों के निवासी भी मानने लगे हैं। वहाँ के एक डाक्टर ने कहा है कि फलों में प्राणशक्ति भरी हुई है और वह प्राणशक्ति उबालने अथवा भूनने पर निकल जाती है। सन् १९०८ ई० में प्रसिद्ध विद्युत-शास्त्रज्ञ ए० ई० वेनिस ने २५ वर्ष लगातार अपने प्रयोगशाला में परिश्रम

---

*फलाहार के सम्बन्ध में विशेष जानना चाहते हों तो हमारे यहाँ से प्रकाशित 'फल उनके गुण तथा उपयोग' नामक पुस्तक पढ़िये।

करने के अनन्तर सिद्ध किया है कि सब प्रकार के फल और मेवों में एक प्रकार की बिजली भरी हुई है, जिससे शरीर का पूर्ण रूप से पोषण होता है।

डाक्टर हरीगेज नामक प्रसिद्ध विद्वान् अपनी 'अमर किस प्रकार बनें,' नामक पुस्तक में कहता है कि अस्वाभाविक पद्धति से रहने के कारण अन्न में का कुछ विषारी क्षार पूर्ण रूप से बाहर न निकलने के कारण कुछ भागों में विशेषकर सन्धि प्रदेश के भागों में सञ्चित हो जाता है। इस कारण सन्धि प्रदेश वाले अंगों का लचीलापन नष्ट हो जाता है और उनका बल भी जाता रहता है। जिस प्रकार पानी बहनेवाले बम्बे में गर्द जमा हो जाने से जल-प्रवाह बन्द हो जाता है उसी प्रकार विषारी क्षार बीच में आ जाने से रक्त-प्रवाह भी धीरे धीरे बन्द हो जाता है और शरीर आवश्यक पोषण न पाने के कारण मरण को प्राप्त होता है। इस विद्वान ने जोर देकर कहा है कि कुछ फल ऐसे हैं जिनमें उपरोक्त संचित मल को हटाने की शक्ति मौजूद है। उनमें से सेव एक है।

फल खाने से जितनी फुर्ती शरीर में आती है, उतनी फुर्ती और किसी प्रकार के भोजन करने से नहीं आती। सन् १९०२ ई० में जर्मनी के डे्रडेन और बर्लिन शहरों के बीच एक दौड़ रखी गयी। फासला १२४ मील था और दौड़नेवालों की संख्या ३२ थी। ये सब डे्रडेन से ७½ बजे सबेरे रवाना हुए। कार्लमन्न नाम का पुरुष २७ घंटे में बर्लिन पहुँचा और वह फलाहारी था। शेष पीछे रह गये।

योगशास्त्र में भी फलाहार की बड़ी महिमा गायी गई है। योगी लोग शरीर के सब व्यापार बन्द करके अपनी सारी शक्ति मन से केन्द्रीभूत कर लेते थे। पाचन-क्रिया में अधिक

शक्ति न व्यय हो इस विचार से केवल शरीर को क़ायम रखने के हेतु कन्द, मूल, फल खाते थे। ये कन्द, मूल, फल इतने पोषक थे कि उनको एक बार खा लेने पर फिर कई दिन तक भूख नहीं लगती थी। इस प्रकार वे लोग पाचन-क्रिया में अधिक शक्ति न खर्च करके सारी शक्ति मानसिक उन्नति में लगाया करते थे। इससे यह स्पष्ट है कि मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिए फलाहार बहुत उपयोगी है।

वर्ण-चिकित्सा नाम की एक चिकित्सा है, जिसमें रङ्ग-विरङ्ग के बोतलों में पानी भरकर सूर्य की किरणों में रखते हैं और फिर उसी पानी को पिलाकर रोग अच्छा कर लेते हैं। जब पानी की यह दशा है तो रंग-विरंग के फलों में सूर्य की किरणें स्वाभाविक रूप से प्रवेश कर उनको रोग दूर करने में कितना उपयोगी बनाती होंगी—इसका विचार पाठकों को स्वयं करना चाहिये।

पाश्चात्य देशों में बहुत ऐसे भी चिकित्सालय खुल गये हैं जिनमें केवल फल खिलाकर रोग दूर किये जाते हैं। न्यूयार्क के पास "जंग वार्न" नामक चिकित्सालय में ड्रस्डेन के बिल्फ़ सैनेटोरियम में, लन्दन के मार्गाटे हास्पिटल में फलाहार से हज़ारों रोगी प्रतिवर्ष चंगे किये जाते हैं।

फल दो प्रकार के होते हैं—ताज़े फल और सूखे फल।

अंगूर, अनार, सेव, नाशपाती, केला, सन्तरा आदि फलों की गणना ताज़े फलों में है। बादाम, पिस्ता, किशमिश, काजू, अंजीर, अखरोट, ज़र्दालू आदि फल सूखे फल कहे जाते हैं।

फलाहार पर रहने वाले मनुष्य को दिन रात में दो-तीन बार करके वज़न में २ से ३ पौंड फल खाना चाहिये; साधारण ऋतु में सूखे और ताज़े फलों की तादाद समान रहनी चाहिये; किन्तु जाड़े में ताज़े फल १ पौंड और सूखे फल २ पौंड और गर्मी में सूखे फल १ पौंड और ताज़े फल दो पौंड कर देना चाहिये।

जो पुरुष फलाहारी बनना चाहता है, उसको पहले सादे अन्न पर रहने की बान कुछ दिनों तक डालिनी चाहिये। इसके बाद वह फलाहार करना आरम्भ करे। पहिले पहिल उसे फलाहार एक बार और एक बार सादा अन्नाहार करना चाहिये। कुछ दिनों तक ऐसा करने के अनन्तर उसे बिलकुल फलाहार प्रारम्भ कर देना चाहिये।

(२) फलाहार से उतर कर अन्नाहार है। रोटी, दाल, भात आदि की गणना अन्नाहार में है। इस प्रकार के भोजन को हम भारतवासी सैकड़ों वर्षों से करते चले आ रहे हैं। इस भोजन की चर्चा पाश्चात्य देशों में भी अब बड़े ज़ोरों से हो रही है। और वहाँ के बहुत से निवासी इसकी उपयोगिता समझने लगे हैं।

लेकिन अन्न जितना सादा होगा उतना ही लाभदायक होगा। खेत में लगी हुई गेहूँ की बालियों का गुण सब से अधिक है। उससे उतर कर भिगोये हुये गेहूँ का, उससे उतर कर रोटी का, उससे उतर कर पूड़ी का और उससे उतर कर पकवानों का। कहने का तात्पर्य यह है कि असली अन्न का जितना अधिक रूपांतर होता जायगा उतना ही उसका गुण कम होता जायगा।

प्रचलित अन्नों में से गेहूँ और चावल का अधिक प्रयोग होता है। कोई कहते हैं कि गेहूँ चावल से अधिक गुणकारी है और कोई कोई चावल को गेहूँ से अधिक गुणकारी सिद्ध करने की कोशिश करते हैं। हमारी समझ में जहाँ का जलवायु जैसा हो वहाँ वही अन्न अधिक गुणकारी समझना चाहिये। बङ्गाल में प्रकृति ने चावल अधिक पैदा किया है। अतएव बङ्गाल निवासियों का मुख्याहार चावल है और चावल उसके लिए अधिक गुणकारी है और पञ्जाब में प्रकृति ने गेहूँ अधिक पैदा किया है, अतएव पञ्जाबियों के स्वास्थ्य के लिए गेहूँ चावल से अधिक गुणकारी है। संयुक्तप्रान्त में चावल व गेहूँ दोनों उत्पन्न होते हैं अतएव यहाँ के निवासियों के लिए दोनों अन्न समान गुणकारी हैं। यही हाल प्रत्येक प्रांत के निवासियों का समझना चाहिये। जिस अन्न को प्रकृति ने जिस प्रांत में अधिकता से पैदा किया है; वही अन्न उस प्रांत के लिए अधिक गुणकारी है।

गेहूँ और चावल के अतिरिक्त चने का भी व्यवहार होता है। चना भी एक अच्छा अन्न है और लोगों के मुख से प्रायः सुनाई पड़ता है "जो खाय चना वह रहे बना" तथापि १०० में ९० पुरुषों को चना हजम नहीं होता। क्या किया जाय, चना चूँकि गेहूँ और चावल से सस्ता है इसलिये बेचारे ग़रीब आदमी इसी अन्न का प्रयोग करते हैं।

तथापि थोड़ा चना क्या अमीर क्या ग़रीब सब को खाना चाहिये। चना दरदरा होने से पेट को साफ़ रखता है। रात में भिगोये हुए कच्चे चने सबेरे खाने से शरीर बलिष्ठ होता है। गेहूँ और चने की मिली रोटी खायी जाय तो कोई हर्ज नहीं

बेसन से चने का आटा गुणकारी है और चूल से खड़े चने अधिक लाभदायक हैं।

संयुक्तप्रांत में ज्वार और बाजरा भी अधिक होता है। बाजरा गर्म होता है, ज्वार रेचक होता है। अतएव इन अन्नों का अधिक उपयोग नहीं करना चाहिये। जाड़े के दिनों में बाजरा खाना लाभदायक है।

दालों में मूँग, अरहर, उर्द, मसूर और चना है। मसूर और चने की दाल का अधिक चलन नहीं है। अरहर, उर्द और मूँग की दाल अधिक व्यवहार में लायी जाती है। हिन्दुस्तान के पूर्वीय भाग में अरहर की दाल बहुतायत से काम में लायी जाती है और हिन्दुस्तान के पश्चिमीय भाग में उर्द की। मूँग की दाल हलकी होती है और प्रायः बीमारों को दी जाती है। मूँग, अरहर और उर्द तीनों दालें खायी जा सकती हैं।

गेहूँ का आटा जितना मोटा हो उतना ही अच्छा है। आटे में से चोकर निकालने की प्रथा बुरी है। वास्तव में चोकर खुरदरा होने से पेट को साफ़ रखता है और पाचन में सहायता देता है। जाँत का पिसा हुआ आटा सर्वोत्तम होता है। चक्की का पिसा हुआ आटा उससे उतर कर है, तब भी बाज़ार के आटे से अच्छा है। मैदा गरिष्ठ अतएव त्याज्य है।

महात्मा गांधी का कथन है कि प्रत्येक घर में एक जाँत होना चाहिये और घर की स्त्रियों को अन्न पीसना चाहिये। हमारे घरों में स्त्रियों के लिए कोई व्यायाम नहीं है। एक घण्टे जाँत में आटा पीसने से व्यायाम हो सकता है। दो काम एक साथ सिद्ध होते हैं—आटा अच्छा खाने को मिलता है और

स्त्रियाँ स्वस्थ्य होती हैं। अमीर घरों की स्त्रियों को जाँत पीसने में लज्जा नहीं करनी चाहिये। जाँत चलाने वाली स्त्रियों के स्वास्थ्य पर ध्यान देने से पीसने की उपयोगिता समझ में आ सकती है।

चावल के पकाने में लोग माँड़ को निकाल कर फेंक देते हैं। माँड़ निकाला हुआ चावल देखने में सुन्दर मालूम होता है और माँड़ मिला हुआ चावल देखने में सुन्दर नहीं मालूम होता। स्मरण रहे, माँड़ के साथ वास्तव में अधिक पोषक द्रव्य निकल जाता है अतएव अब सुन्दरता की ओर न जाकर गुण की ओर जाना चाहिये और माँड़ मिला हुआ चावल खाना चाहिये।

दाल भूसी सहित खाना चाहिये। धोई हुई दाल से भूसी सहित दाल अधिक गुणकारी है। दाल को केवल ज़ीरे से छौंक सकते हैं, लेकिन उसमें नाना प्रकार के मसाले डालना हानिकारक है।

तरकारी पेट और ख़ून को साफ़ करती है। अतएव भोजन के साथ तरकारी भी ख़ूब खानी चाहिये। परवल और लौकी की तरकारी अच्छी है। आलू, नेनुआ, भिण्डी, सब प्रकार की गोभी दूसरे दर्जे की तरकारी है, भाँटा, कुम्हड़ा की गणना तीसरे दर्जे में की जानी चाहिये। सब प्रकार के शाक चौराई, पालक आदि सब तरकारियों से अधिक गुणकारी हैं और सस्ते भी हैं। अतएव इनका व्यवहार अधिक करना चाहिये। तरकारी में अधिक मिरचे और मसाले नहीं डालना चाहिये।

पूरियाँ, पकवान और मिठाइयाँ अधिक नहीं खाना चाहिये। लोगों का ख़याल है कि इनके खाने से ताक़त अधिक

होती है, लेकिन वास्तव में इनके खाने से ताक़त नहीं आती, उल्टे ये पेट को ख़राब कर पाचन-शक्ति को बिगाड़ देते हैं। इनसे ताक़त तो नहीं आती है शरीर अवश्य फूल आता है। अधिक मिठाइयाँ खाने से प्रायः पेशाब के साथ सफ़ेदी गिरने लगती है। अतएव केवल त्योहार ही पूरियाँ, पकवान और मिठाइयाँ खाने के लिए रिज़र्व कर देना चाहिये। इनका व्यवहार नित्य नहीं करना चाहिये।

दूध एक अच्छा पेय पदार्थ है। क़रीब सब डाक्टरों ने इसकी प्रशंसा की है। इसमें वे सब पदार्थ मौजूद हैं जिनसे शरीर का पोषण होता है। दिमाग़ी काम करने वालों को दूध पाव-आध सेर अवश्य पीना चाहिये। दूध धीरे धीरे पीना अच्छा है, गटर गटर अधिक दूध पीना अच्छा नहीं है।

सबसे उत्तम दूध धारोष्ण (ताज़ा दुहा हुआ) होता है। ऐसा दूध बहुत जल्द पचता है। गरम किया हुआ भी दूध अच्छा है। दो चार उबाल आने पर दूध उतार कर मिश्री अथवा बूरे के साथ पीना चाहिये। दूध को अधिक औटाना नहीं चाहिये। औटाने से उसका गुण कम होता जाता है और उसमें गरिष्ठता भी आ जाती है। अधिक औटाया हुआ दूध, रबड़ी, खोआ, मलाई गरिष्ठ हैं और दूध से अधिक उपयोगी नहीं हैं। अतएव इनका व्यवहार बहुत ही कम होना चाहिये।

दाल, तरकारी में नमक अधिक डाला न जाय जहाँ तक हो नमक कम खाया जाय। दाल के साथ घी भी थोड़ा खाना चाहिये। अधिक घी का खाना हानिकारक है। मिरचा, अचार का अधिक सेवन नहीं करना चाहिये। मिरचा और चटनी त्याज्य है। आचार नीबू का अच्छा होता है। आम का अचार

भी कभी कभी खा लिया जाय तो कोई हानि नहीं है; लेकिन रोज़ की आदत नहीं डालनी चाहिये।

अतएव वनस्पत्याहार में रोटी, दाल, भात, तरकारी खाना चाहिये और दूध पीना चाहिये।

(३) तीसरे प्रकार का आहार मांसाहार है! भारतवर्ष की हिन्दू जनता को मांस भक्षण से होनेवाली हानियों को बतलाने की आवश्यकता नहीं है। पाश्चात्य देशों के लोग भी अब वनस्पत्याहारी बन रहे हैं। जल-चिकित्सा के प्रसिद्ध डाक्टर लुईकूने ने मांस खाने का निषेध बड़े ज़ोरों से किया है।

मांसाहारी पुरुष का स्वभाव तामसी होता है। उसको क्रोध शीघ्र आता है, उसका मन उसके वश में नहीं रहता। मन की शान्ति उसे नहीं मिल सकती है।

हिन्दुस्तान के ईसाई और मुसलमान मांसाहारी तो होते ही हैं; किन्तु शोक तो इस बात का है कि अनेक हिन्दू भी मांस का व्यवहार करते हैं। हिन्दुओं में इसका व्यवहार क्रमशः नई रोशनी के साथ और भी अधिक बढ़ रहा है। हिन्दुओं के मांस खाने से, अधिक गोश्त की खपत से बकरे का गोश्त मँहगा हो गया है। बकरे के गोश्त की मँहगी से मुसलमान और ईसाई लोग गौ के मांस को अधिक ख़रीदने लगे हैं, क्योंकि गौ का मांस बकरे के मांस से सस्ता मिलता है। भारतवर्ष में गो-बध इसलिए बढ़ गया है और बढ़ता जा रहा है। अतएव हमारी प्रार्थना तो सब धर्मावलम्बियों से है कि वे मांस खाना छोड़ दें, लेकिन गौ और ब्राह्मण की रक्षा का दम भरनेवाले हिन्दुओं को तो ज़रूर ही छोड़ देना चाहिये।

मांस के साथ साथ देश में शराब पीने का रिवाज़ बहुत बढ़ गया है, लाखों रुपये केवल शराब में खर्च किये जाते हैं। प्रत्येक शहर और बड़े गाँव में एक शराबखाना अवश्य होता है। शराब बनाते समय हज़ारों कीड़े-मकोड़ों का भी रस शराब के साथ मिलकर लोगों के पेटों में जाता है। शराबी जब शराब पीकर बाहर निकलता है तो प्रायः नालियों में गिर पड़ता है और कुत्ते उसके मुँह में पेशाब करते हैं। उसका दिमाग़ कमज़ोर और उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। अतएव मांस और मदिरा का व्यवहार सर्वथा त्याज्य समझना चाहिए।

६—हम क्या खायें और कब खायें ?

प्रत्येक भोजन में 'फैट्स' प्रोटीन, और 'कार्बो-हाईडरेट' मिला हुआ है। किसी में एक पदार्थ की अधिकता है और किसी में दूसरे या तीसरे की। साधारणतया सब प्रकार के अन्नों में 'कार्बोहाईडरेट' अधिक होता है। दाल में 'प्रोटीन' ज्यादा है और घी और तेल में फैट्स अधिक है। कार्बो-हाईडरेट का गुण शरीर की गरमी क़ायम रखना है, प्रोटीन का गुण शरीर की स्फूर्ति बढ़ाना है और फैट से मांस की वृद्धि होती है। अतएव शरीर को स्वस्थ रखने के लिए ऐसे भोजन की आवश्यकता है जिसमें ये सब पदार्थ आवश्यक परिमाण में मिले हों। केवल फैट, प्रोटीन या कार्बोहाईडरेट के खाने से मनुष्य स्वस्थ नहीं रह सकता।

हमारे पूर्वजों ने नित्य का—रोटी, दाल, भात, तरकारी, घी, दूध का—जो सादा भोजन रखा है, उसमें सब आवश्यक पदार्थ मिश्रित हैं। रोटी भात में कार्बोहाईडरेट है, दाल दूध में प्रोटीन है और घी में फैट है। इसमें रद्दोबदल की कोई आवश्यकता नहीं है। इसी नियत किये हुए भोजन से मनुष्य स्वस्थ रह सकता है।

केवल फल और दूध ऐसे हैं जिनमें तीनों पदार्थ आवश्यक वज़न में मिलते हैं। अतएव केवल फल खाकर या केवल दूध पीकर भी मनुष्य मज़े में स्वस्थ रह सकता है।

बहुत से डाक्टरों का मत संग्रह करके हम निम्नलिखित परिमाण का भोजन रात-दिन में थोड़ा थोड़ा करके प्रत्येक तरुण मनुष्य के लिए काफी समझते हैं :—

आटा १० छटाँक, दाल २ छटाँक, चावल २ छटाँक, घी ½ छटाँक, नमक ¼ छटाँक, तरकारी ४ छटाँक, फल पाव भर, दूध आध सेर ।

भोजन उस समय करना चाहिये जब क्षुधा ख़ूब लगी हुई हो। असली क्षुधा और नकली क्षुधा में अन्तर है। इस ओर कुछ लोग सोडावाटर लेमोनेड आइसक्रीम मलाई का बरफ़ पकवान और दूसरे स्वादिष्ट पदार्थ खाकर क्षुधा निवारण करते हैं। किन्तु इन मनुष्यों को शीघ्र ही अनुभव होता है कि मीठे पानी पीने व स्वादिष्ट भोजन करने से उनकी स्वाभाविक क्षुधा निवारण नहीं होती; उलटे इस चक्कर में पड़ने से उनकी स्वाभाविक भूख नष्ट हो जाती है। एक बार जब आदत पड़ जाती है तो उनको अन्न की अपेक्षा ये स्वादिष्ट पेय और खाद्य पदार्थ अधिक रुचिकर मालूम होते हैं। वे फिर जीवन में सच्ची भूख का अनुभव कभी नहीं करते।

स्वाभाविक भूख उन प्राणियों में विशेष रूप से देखने में आ सकती है जिनका संसर्ग मनुष्यों से नहीं रहता। वन के पशु और पक्षी इधर उधर विचरते रहते हैं और भोजन की तलाश उसी समय करते हैं जब उनको भूख मालूम होती है। हमारे यहाँ के पशु पक्षियों की सी सच्ची क्षुधा निरंतर कृत्रिम और स्वाभाविक भोजन देने से नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार घर के लड़कों की सच्ची क्षुधा भी लाड़-प्यार के कारण

मनमानी मीठा, पकवान वा मोहनभोग खिलाने से नष्ट हो जाती है। हिन्दुस्तान का यह हाल है कि जो माँ-बाप जितने अमीर होते हैं वे उतने ही नज़ाकत के भोजन ख़ुद करते हैं और अपने बच्चों को कराते हैं। सच्ची क्षुधा क्या है इसका अनुभव उन्हें कभी नहीं होता।

मनुष्यों के ऐसी मण्डली को सच्ची क्षुधा का अनुभव उस समय कुछ होता है जब वे भाग्यवश कभी तीर्थ-यात्रा को निकलते हैं और संयम से रहने का निश्चय करते हैं। पैदल घूमने और कभी कभी देर में भोजन मिलने के कारण उनके पेट में सच्ची भूख उत्पन्न होती है। उस समय मोटे से मोटा अन्न खाने में उन्हें विशेष आनन्द मालूम होता है; लेकिन घर आकर फिर पुरानी आदत पड़ जाती है।

स्वाभाविक भूख लगने के समय मुँह में लार उत्पन्न होती है और मन में एक विशेष प्रकार की चेतनता पैदा होती है। उस समय यदि कोई अन्न का नाम ले लेता है तो कभी मुँह में लार भी भर आती है। उस समय जो अन्न खाया जाता है उसमें विशेष आनन्द आता है। ऐसी भूख उसी समय जागृत होती है जब भोजन समय से किया जाय और भोजन के पदार्थ स्वाभाविक हों। प्रत्येक मनुष्य को सच्ची भूख लगने पर ही भोजन करना चाहिये।

भोजन पेट भर दो बार करना चाहिये। प्रातःकाल ९ बजे और रात को ७ बजे। प्रायः लोग प्रातःकाल रोटी खाते हैं और सायंकाल पूरियाँ। पूरियाँ खाने से रोटी खाना अच्छा है इसलिये दोनों समय यदि रोटी खाई जाय तो और भी उत्तम है। भोजन सादा हो, मसाले अधिक न डाले जायँ।

सबेरे ७ बजे और सायंकाल ४ बजे यदि जलपान की आवश्यकता हो तो केवल फल जलपान करना चाहिये। पकवान और मिठाइयों का जलपान करना हानिकारक है। इससे भूख मर जाती है और दोनों समय के भोजन में आनन्द नहीं आता। फल यदि न मिले तो थोड़ा सा दूध पी लिया जाय और यदि फल और दूध न मिले तो फिर जलपान करने की कोई आवश्यकता नहीं। गरम दूध रात को पीना चाहिये।

भोजन करते समय पानी बिलकुल न पिया जाय, यदि बिना पानी पिये न रहा जाय यो बहुत थोड़ा पानी पीना चाहिये।

भोजन खूब कुचल कुचल कर करना चाहिये। उसे इतना कुचलना चाहिये कि वह थूक में मिल जाय। ईश्वर ने बत्तीस दाँत मुँह में दिये हैं, अतएव बत्तीस बार प्रत्येक ग्रास को कुचलना सर्वोत्तम है।

यदि इतनी बार कुचलने का निर्बाह न हो सके तो २० बार तो अवश्य ही कुचलना चाहिये। भोजन करने में बड़े धैर्य की ज़रूरत है, उतावली नहीं करनी चाहिये। इंगलैण्ड का प्रसिद्ध राज-सचिव ग्लेडस्टन काम में इतना फँसा रहने पर भी दोनों समय कुचल कुचल कर भोजन करता था और इसी कारण वह दीर्घजीवी होकर मरा था।

भोजन सदैव कम करना चहिये, ठूँस ठूँस कर नहीं खाना चाहिये। हिन्दी में कहावत है "कम खाना और गम खाना" कम खाने से जितने आदमी नहीं मरते उससे कहीं अधिक आदमी अधिक खाने से मर रहे हैं। भगवान बुद्ध ने कहा है

एक बार हलका आहार करनेवाला महात्मा, दो बार सँभल कर खानेवाला बुद्धिमान और भाग्यवान है और इससे अधिक बेअटकल खानेवाला महामूर्ख, अभागा और सींग-पूँछ रहित पशु है।"

आजकल अधिक भोजन करने की प्रथा बढ़ गई है। लोग तह पर तह जमाते चले जाते हैं। रबड़ी, मलाई, हलुआ, मालपूआ खूब उड़ाया जाता है। अमीरों के यहाँ तो भोजन का अतिरेक होता है, इतना अन्न ख़राब किया जाता है जिस से कई ग़रीब मनुष्यों का पालन हो सकता है। ये भोजन में व्यर्थ पैसा भी ख़र्च करते हैं और रोग भी पाल लेते हैं। पेट को ठूँस ठूँस कर भरने से हैज़ा बहुत जल्द होता है और इन्फ्लुयन्ज़ा के हो जाने की भी आशंका रहती है। देखिये, आस्ट्रेलिया के प्रसिद्ध डाक्टर हर्न क्या कहते हैं—"मनुष्य जितना खा लेता है उसका तिहाई हिस्सा भी नहीं पचा सकता। न पचनेवाला यह शेष भाग पेट में रह कर रक्त को विषैला बनाता है और असंख्य विकार पैदा करता है। इससे प्राणशक्ति का दोहरा नाश होता है—एक तो फ़ालतू भोजन के पचने में और दूसरा उसको बाहर निकालने में। अतएव अल्पाहार करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य होना चाहिये।"

भोजन अल्प और साथ ही सात्विक होना चाहिये। तामसिक भोजन का सदैव त्याग करना चाहिये। भगवान कृष्ण ने सात्विक और तामसिक भोजनों का विवेचन इस प्रकार किया है—

कट्वम्ल लवणात्युष्ण तीक्ष्ण रूक्ष विदाहिनाः।
आहारा राजसस्येष्टा दुख-शोक-भयप्रदाः॥

यात यामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपिचामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्॥

अर्थात्—भोजन ताज़ा, रसयुक्त, हलका, स्नेहयुक्त और प्रिय हो—जैसे गेहूँ, चावल, जौ, मूँग, अरहर, चना, दूध, घी, चीनी, सेंधा नमक, शुद्ध व पके फल आदि—इनको सात्विक आहार कहते हैं।

अत्यन्त उष्ण, कड़ुआ, रूखा, चटपटा, खट्टा, गरिष्ठ-जैसे खटाई, लाल मिर्च, प्याज़, लहसुन, मांस, मछली, अंडा, शराब, चाय, काफ़ी, तम्बाकू, गाँजा, आदि—तामसी आहार हैं। इनसे काम-क्रोध बढ़ता है और आयु, तेज, सामर्थ्य और सौभाग्य घटता है। अतएव ये त्याज्य हैं।

भोजन के समय विचार पवित्र और ऊँचे होने चाहिये, विचारों का और भोजन का बड़ा गहरा सम्बन्ध है। जिस समय आपको चिन्ता रहती है उस समय आपका सारा शरीर व्याकुल होने से आपकी पाचन-क्रिया भी मन्द हो जाती है। जो पुरुष अप्रसन्न चित्त से और अपने मस्तिष्क को नाना प्रकार की चिन्ताओं से व्याकुल रखते हुए नित्य भोजन करते हैं उनका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और वे अल्पायु में मर जाते हैं।

अतएव भोजन करते समय हमेशा प्रसन्न रहिये। भोजन के पश्चात् १०० कदम इधर उधर टहलना चाहिये और कम से कम आधे घण्टे तक किसी प्रकार का मानसिक अथवा शारीरिक काम नहीं करना चाहिये। बाज़ार की चीज़ों से सदा परहेज़ करना चाहिये। पूरी-मिठाई बाज़ारों में खुली रखी रहती हैं और मक्खियाँ उन पर भिनभिनाया करती हैं। अतएव उनमें नाना प्रकार के विषैले जीवाणु उत्पन्न हो जाते हैं। इससे इनसे बचना उचित है।

७—व्यायाम

पहले प्रत्येक गाँव में और शहर के प्रत्येक मुहल्ले में एक अखाड़ा हुआ करता था जिसमें उस गाँव अथवा महल्ले भर के लोग मिल कर व्यायाम करते थे। इन अखाड़ों में अच्छे अच्छे वलिष्ठ और भीमकाय पहलवान तैयार होते थे। बरसात में दंगल लगा करते थे और अच्छी अच्छी जोड़ें लड़ती थीं और उन्हें पुरस्कार भी दिया जाता था; किन्तु लोगों की प्रवृत्तियाँ बदल कर विषय की ओर अब अधिक जा रही हैं। इसलिये अखाड़े और दङ्गल की प्रथा घट रही है और भारत-निवासियों का स्वास्थ्य धीरे धीरे बिगड़ रहा है।

कालिज और स्कूलों में पढ़नेवाले विद्यार्थियों की शारीरिक अवस्था और भी अधिक शोचनीय है। सोलह-सोलह बीस-बीस बरस के नवजवान जिनके चेहरे सदैव हीरे की तरह चमकना चाहिये, आज क्षीणकाय-मनमलीन दिखलाई पड़ते हैं। दिन-रात पुस्तकों को पढ़ते पढ़ते वे अपना दिल और दिमाग़ कमज़ोर कर डालते हैं। व्यायाम करने की छुट्टी उन्हें नहीं मिलती। डंड बैठक और कुश्ती से परहेज़ वे इस वास्ते करते हैं कि इनसे शरीर में धूल लग जायगी और कपड़े मैले हो जायँगे। इने-गिने लोग हाकी, फुटबाल, क्रिकेट आदि खेलने के लिए खेल की ज़मीन पर जाते हैं। कुछ विद्यार्थी एक-दो मील टहल आते हैं; किन्तु अधिकतर विद्यार्थी न तो फ़ील्ड पर जाते हैं और न टहलने के लिए बाहर खुली हवा में निकलते हैं। विद्यार्थी

समुदाय इसी कारण अस्वस्थ रहता है और हमारे होनहार नव-जवान अल्पायु में मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

धनिकों की हालत भी विद्यार्थियों की तरह शोचनीय है। वे दिन-रात तकियों के सहारे गद्दी पर लेटे रहते हैं। बहुतों के शरीर का मांस थुलथुलाता हुआ लटका करता है और घड़े के सदृश उनकी तोंद भी सामने लटकती रहती है। बदहज़मी उन्हें सदैव रहती है। चूरन की मदद से उन्हें शौच होता है। उनका वीर्य दूषित हो जाता है और इसलिये उनके सन्तान नहीं होती।

हिन्दुस्तान के जनसाधारण, विद्यार्थी और धनिकों के स्वास्थ्य नष्ट होने के मुख्य दो कारण हैं—(१) ब्रह्मचर्य का नाश, (२) व्यायाम का अभाव। ब्रह्मचर्य का महत्व हमने दूसरे प्रकरण में दिखलाया है, यहाँ हम केवल व्यायाम के विषय की चर्चा करना चाहते हैं।

मेदे में भोजन के पचने से रस बनता है और रस से ख़ून बनता है। तभी यह रक्त नियम से नाड़ियों में परिभ्रमण करता है। भोजन ठीक न पचने के कारण रक्त-सञ्चालिनी सब नाड़ियाँ रक्त ग्रहण करने में अशक्त हो जाती हैं और इसीलिये शरीर शिथिल हो जाता है। शरीर की नाड़ियाँ विद्युत-तार की नाईं निस्सत्व होती हैं। जिस प्रकार बिजली की धारा से बिजली के तार में उत्तेजना होती है, उसी प्रकार व्यायाम द्वारा ख़ून में गर्दिश पहुँचने से शरीर की नस-नाड़ियाँ उत्तेजित व कार्य्यशील हो जाती हैं। भोजन को पचाने व उसमें से रस खींचने के लिये भी शरीर में गर्मी की आवश्यकता है और वह गरमी भी व्यायाम ही द्वारा पैदा की जा सकती है। व्यायाम द्वारा गरमी पहुँचने से शरीर की नस-नाड़ियाँ

भोजन के रस को इस प्रकार खींचती हैं जिस प्रकार पानी को स्पञ्ज। शरीर में इस ग्राहक शक्ति को पैदा करना ही वास्तव में व्यायाम का मुख्य उद्देश्य है।

व्यायाम का दूसरा उद्देश्य मल को शरीर के बाहर निकाल फेंकने की शक्ति को बढ़ाना भी है। हमारे शरीर में जिस प्रकार पोषक द्रव्य ग्रहण करने के मार्ग हैं, उसी प्रकार विजातीय द्रव्य (Foreign matter) को भी बाहर निकाल फेंकने के बहुत से मार्ग हैं। विजातीय द्रव्य को बाहर निकाल फेंकने के लिए भी गरमी की आवश्यकता है और गरमी व्यायाम ही के द्वारा पैदा हो सकती है।

अतएव भोजन को पचाना और मल को शरीर से बाहर दूर फेंकने में सहायता देना व्यायाम के मुख्य उद्देश्य हैं। जिसका भोजन ठीक रीति से पचेगा और जिसका मल ठीक रीति से बाहर निकलेगा वही मनुष्य स्वस्थ रह कर निरोग और दीर्घजीवी बनेगा।

व्यायाम दो प्रकार से किया जाता है—एक नियमित और दूसरा अनियमित। व्यायाम के नियमों को ध्यान में रखते हुए जो व्यायाम किया जाता है वह नियमित व्यायाम कहलाता है और इसके विपरीत का व्यायाम अनियमित। लोहार दिन भर हथौड़ा चलाता है, यह अनियमित व्यायाम है, इसका शरीर स्वस्थ और बलयुक्त नहीं होता। पहलवान नियम से कुछ काल प्रातः व्यायाम करता है, यह नियमित व्यायाम है। इस प्रकार के व्यायाम से शरीर सुडौल, बलयुक्त और सुसंगठित होता है।

व्यायाम करते समय शरीर के अंगों की ओर अपनी इच्छाशक्ति (Will Power) को पूर्णतया लगानी चाहिये।

इच्छा रहित व्यायाम लाभकारी नहीं होता । और इसी कारण बहुत लोग व्यायाम के लाभों से प्रायः वञ्चित रहते हैं। जिस पेशी (Muscle) को जितना मज़बूत करना चाहें उस पेशी में व्यायाम करते समय उतनी इच्छा-शक्ति लगाना चाहिये ।

व्यायाम करने से पेशियों में पीड़ा उत्पन्न होती है। बहुत से लोग उस पीड़ा के तात्पर्य्य को नहीं समझते । वे व्यायाम करना बन्द कर देते हैं। वास्तव में इस प्रकार व्यायाम द्वारा उत्पन्न हुई पेशियों को पीड़ा पेशियों में नये बल प्राप्त करने की भूख पैदा किया करती है । अतएव पीड़ा के होने से व्यायाम छोड़ देना एक भारी भूल है । उस पीड़ा की शान्ति व्यायाम ही से करनी चाहिये। पीड़ा होते हुए भी एक सप्ताह तक लगातार व्यायाम करने से पीड़ा दूर हो जाती है। व्यायाम प्रारम्भ करने के पहले ही दिन अधिक व्यायाम नहीं करना चाहिये। थोड़े से प्रारम्भ करके उसे बढ़ाना चाहिये । एकदम से बहुत व्यायाम करना हानिकारक होता है ।

हमारे देश में लोग डंड-बैठक करते हैं, जोड़ी (मुगदर) हिलाते हैं, कुश्ती लड़ते हैं, डम्बल करते हैं, चेस्ट-इक्सपैण्डर खींचते हैं, जमनास्टिक करते हैं, दौड़ लगाते हैं, घूमते हैं और हाकी, फुटबाल, क्रिकेट आदि अङ्गरेजी खेल खेलते हैं। किस प्रकार का व्यायाम किस व्यक्ति को करना चाहिये इसको व्यवस्था उसकी अवस्था पर निर्भर है ।

१० वर्ष की आयु तक के बालक को किसी प्रकार के व्यायाम करने की आवश्यकता नहीं है। वह स्वयं प्रातः से सायंकाल तक इतना दौड़ता और खेलता है कि उसका शरीर

शिथिल हो जाता है और उसी दौड़ और खेल में उसका व्यायाम हो जाता है।

१० से १६ वर्ष तक के लड़कों को अब व्यायाम प्रारम्भ करना चाहिये। इस अवस्था में देह की नस, नाड़ियाँ और हड्डियाँ इतनी मुलायम होती हैं कि एक वृक्ष के अंकुर के समान उनकी वृद्धि सरलता से की जा सकती है। इस अवस्था में लड़के को बाहर खुली स्वच्छ हवा में ख़ूब दौड़ना चाहिये और अङ्गरेज़ी खेल खेलने के लिए खेल की ज़मीन पर भेजना चाहिये। एक एक पेशी की वृद्धि के लिए उसे डम्बल का व्यायाम भी कराना चाहिये। १२ वर्ष के पश्चात् उसे डंड और बैठक कराना चाहिये। ३०, ४० डंड और इतने ही बैठक काफ़ी हैं। कुश्ती भी थोड़ी थोड़ी प्रारम्भ कर देनी चाहिये।

१६ वर्ष के पश्चात् तरुण अवस्था में कठिन व्यायाम करने की आवश्यकता है। डंड बैठक ५० से १०० तक करना चाहिये। मुगदर हिलाना, डम्बल और जमनास्टिक करना चाहिये। इस अवस्था में कुश्ती ख़ूब लड़ना चाहिये। कुश्ती लड़ने से एक एक हड्डी पर ज़ोर पड़ता है और इसलिये वह और व्यायाम की अपेक्षा अधिक मज़बूत होती है।

वृद्ध अवस्था में व्यायाम कम करना चाहिये। इस अवस्था में अङ्ग-प्रत्यंग ढीला हो जाता है। अतएव अधिक व्यायाम करने से उसमें हानि पहुँच सकती है। इस अवस्था में प्रातः और सायंकाल खुली हवा में टहलना सब से उत्तम व्यायाम है।

तेल की मालिश भी एक प्रकार का व्यायाम है। इससे भी ख़ून में गरमी पैदा होती है। कड़ुवे तेल की मालिश

सर्वोत्तम है। इससे शरीर के छिद्र का मल रगड़ से निकल जाता है और चमड़े के कृमि मर जाते हैं और शरीर चिकना रहता है। पहलवानों में यह प्रथा अधिक देखी जाती है। प्रत्येक स्कूल के विद्यार्थी को चाहे वह जिस आयु का हो सप्ताह में कम से कम दो बार मालिश अवश्य करना चाहिये। मालिश के पश्चात् साबुन लगाकर स्नान कर डालना चाहिये।

व्यायाम करने का सब से उत्तम समय प्रातःकाल का है। शौच-क्रिया से निवृत्त होकर व्यायाम करने के लिए डट जाना चाहिये। स्नान करके व्यायाम किया जाय तो अधिक अच्छा है। यदि व्यायाम के बाद स्नान करना हो तो व्यायाम समाप्त हो जाने के एक घण्टे बाद स्नान करना चाहिये। व्यायाम कम से कम आध घण्टे अवश्य करना चाहिये। भोजन करने के उपरान्त व्यायाम नहीं करना चाहिये।

व्यायाम करने का स्थान खुला हवादार होना चाहिये। वहाँ सफ़ाई ख़ूब रखनी चाहिये, किसी प्रकार की दुर्गन्धि न आती हो। फूलों के कुछ पौधे लगा देना चाहिये। या व्यायाम-शाले के ऊपर लतर चढ़ा देना चाहिये। अगल-बग़ल थोड़े तैयार गमले भी रख देना चाहिये। भीम, अर्जुन आदि वीरों के चित्र भी टाँगना चाहिये। कहने का तात्पर्य यह है, व्यायाम के स्थान को इस प्रकार सुसज्जित करना चाहिये कि उसे देखकर चित्त को प्रसन्नता हो।

हमारे यहाँ स्त्रियों के लिए व्यायाम की कोई व्यवस्था नहीं है। आवश्यकता है कि कोई व्यवस्था की जाय। थोड़ी सी पढ़ी लिखी स्त्रियाँ टेनिस खेल सकती हैं, किन्तु भारत की साधारण स्त्रियाँ नहीं खेल सकतीं। आजकल की पढ़ी-लिखी

स्त्रियाँ मुझ पर हँसेंगी किन्तु मैं तो भारतवर्ष भर की स्त्रियों के लिए चक्की चलाने की पुरानी प्रथा क़ायम रक्खूँगा। देहात की स्त्रियाँ कितनी मज़बूत होती हैं कारण इसका यह है कि वे घर में चक्की चलाती हैं, निराई-बुवाई करती हैं और घर का सब काम-काज अपने हाथ से करती हैं। नगरों की स्त्रियाँ कमज़ोर होती हैं। वे हाथ से, जहाँ तक हो, काम नहीं करना चाहतीं। अपने नौकरानियों से काम करवा लेती हैं। अतएव स्त्रियों को, चाहे वे शहरों की हों अथवा गावों की, एक घण्टे चक्की उस समय तक व्यायाम के लिए रोज़ चलाना चाहिये जब तक उनके लिये व्यायाम करने का कोई दूसरा सुलभ मार्ग न निकाला जाय। उन्हें प्रातः या सायंकाल अपने पति के साथ घूमने के लिए बाहर भी निकलना चाहिये।

चाहे स्त्री हो अथवा पुरुष, जो मनुष्य भोजन करता है उसे व्यायाम की उतनी ही आवश्यकता है, जितनी आवश्यकता उसे भोजन की है। व्यायाम की बान लड़कपन से डालनी चाहिये। एक बार जब व्यायाम करने का आनन्द आ गया तो लोग व्यायाम आप से आप करेंगे।

स्कूल में पढ़नेवाले लड़कों के माता-पिताओं से हमारा अनुरोध है कि यदि उन्होंने अपने बच्चों को पैदा किया है तो वे उनकी मानसिक और शारीरिक उन्नति पर भी ध्यान दें। अपने सामने बालकों को व्यायाम करावें और यह तभी हो सकता है जब वे पहिले स्वयं व्यायाम करें और फिर अपने लड़कों से व्यायाम करने के लिए कहें।

शरीर में व्यायाम रूपी अग्नि न देने से शरीर निकम्मा, गति-शून्य और निर्बल पड़ जाता है। जिन खाद्य वस्तुओं से रक्त

और बल का संचय होना चाहिये वे सड़ने लगती हैं और शरीर में दुर्गन्धि उठने लगती है। भोजन के अन्दर सड़ने से दिमाग में बुरे बुरे विचार उत्पन्न होने लगते हैं। और मनुष्य की इन्द्रियाँ उसके वश में नहीं रहतीं। बुद्धि और स्मृति भी मन्द हो जाती है और युवा अवस्था ही में बुढ़ापे के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगते हैं। ऐसे मनुष्यों की सन्तान भी रोगी और निर्बल होती है। अतएव इस मानव शरीर से यदि आनन्द उठाना है तो इसे व्यायाम द्वारा बलिष्ठ करना प्रत्येक स्त्री-पुरुष को अपना मुख्य कर्तव्य समझना चाहिये।

८—स्नान

आजकल नाना प्रकार के रोग शरीर को साफ़ न रखने ही के कारण पैदा होते हैं। जिस प्रकार अच्छे अच्छे पवित्र विचारों से मन को शुद्धि होती है, उसी प्रकार स्नान द्वारा शरीर की शुद्धि होती है।

शरीर के भीतर की गन्दगी त्वचा, श्वास और मूत्र द्वारा निरन्तर निकला करती है। त्वचा में छोटे छोटे असंख्य रन्ध्र होते हैं वे सूक्ष्म यंत्र की सहायता से अच्छी तरह दिखलाई पड़ते हैं। इन्हीं छिद्रों से होकर भीतर का मल पसीने द्वारा थोड़ा बहुत हर समय निकला करता है। परिश्रम के समय या अधिक गरमी पड़ने पर इसकी मात्रा बढ़ जाती है। ठंडी हवा के लगने से जब पसीने का द्रव भाग वाष्प बनकर उड़ जाता है तो अद्रव मैल छेदों में जम जाता है। यह मैल यदि रोज़ साफ़ न किया जाय तो नाना प्रकार के विकार उत्पन्न करता है। अतएव इस मैल की सफ़ाई के लिए रोज़ स्नान करना अत्यन्त आवश्यक है।

नदी; सरोवर या किसी बहते हुये पानी में स्नान करना सर्वोत्तम है। जिन लोगों के समीप नदी या तालाब मौजूद हैं उन्हें उसी में स्नान करना चाहिये। नहाते समय इस बात का ख़याल करना चाहिये कि शरीर का प्रत्येक भाग पानी से आर्द्र हो जाय। नदी और तालाब में शरीर अच्छी तरह जल से तर हो जाता है। शरीर की दुर्गन्धि से गन्दा हुआ जल अति शीघ्र बह जाता है और उसकी जगह लाखों गैलन जल फिर उपस्थित हो जाता है।

जो लोग नदी में स्नान करने वाले हैं उन्हें तैरना भी जानना आवश्यक है। नहाते समय थोड़ी देर तैरना उत्तम है। नदी में स्नान करने से छिद्रों का मल फूल जाता है और हाथ से या किसी अँगौछे से रगड़ देने से वह बिलकुल साफ़ हो जाता है। दूसरे तैरते समय परिश्रम पड़ने के कारण सारे शरीर को व्यायाम पहुँचता है और तैरने वाले के अङ्ग प्रत्यंग सुदृढ़ हो जाते हैं।

जहाँ बहते हुये जल में इस प्रकार का स्नान प्राप्त नहीं है वहाँ लोगों के घर में ही स्नान करने की व्यवस्था करनी पड़ती है। शहरों में लोग नल के नीचे स्नान कर लेते हैं, किन्तु जहाँ नल का प्रबन्ध नहीं है वहाँ उन्हें कुओं में स्नान करना पड़ता है। चाहे कुओं में स्नान करने को मिले और चाहे नल के नीचे दोनों जगह नहाने की प्रणाली एक ही है। एक पतला अँगौछा या लँगोट पहिन कर स्नान करने के लिए बैठ जाइये और पास एक लोटा और पानी से भरी एक बाल्टी रख लीजिये। पानी से पहिले अपने सर को भिगोइये, इसके अनन्तर हाथ और पैरों को धोइये। और फिर शरीर भर में लोटे से पानी उड़ेलिये। शरीर अच्छी तरह भीग जाने पर तौलियों को अच्छी तरह भिगोइये और फिर उसी से शरीर को मलना शुरू कीजिये। स्मरण रखिये तौलिए का खुरदरा होना आवश्यक है। गाढ़े के टुकड़े से भी तौलिये का काम चल सकता है। तौलिये से शरीर को क़रीब १० मिनट तक मलते रहिये। इसके पश्चात् शरीर पर पानी फिर डालिये और ५ मिनट तक बराबर डालते रहिये। बस आपका स्नान हो चुका। शरीर को एक सूखे तौलिये से पोंछ डालिये और शरीर थोड़ा थोड़ा नम रहते ही सूखे स्वच्छ कपड़े पहिन लीजिये। स्नान कम से कम २० मिनट तक करना चाहिये।

यह तो स्नान करने की साधारण रीति हुई। अनेक लोगों के यहाँ स्नानागार (Bath rooms) हुआ करते हैं और उनके यहाँ नाँद (Tub) का भी प्रबन्ध रहता है। ऐसे लोगों को विधिपूर्वक स्नानागार ही में स्नान करना चाहिये, टब को पानी से भर लीजिये और नंगे होकर उसी में बैठ जाइये। इसमें लज्जा की बात नहीं है। तत्पश्चात् तौलिये को टब में भिगो भिगो कर शरीर को मलते जाइये। कम से कम २० मिनट इस प्रकार स्नान करके टब से निकल आइये और दो-चार लोटे स्वच्छ पानी ऊपर उड़ेल लीजिये और शरीर को पोंछ कर फिर सूखे स्वच्छ कपड़े पहिन लीजिये।

नहाते समय कभी कभी साबुन का भी व्यवहार करना चाहिये। साबुन से गन्दगी निकलने में विशेष सहायता मिलती है। सर को कम तेज साबुन, बेसन अथवा आँवले से मलना चाहिये।

गाँवों में नहाने की परिपाटी बड़ी बुरी है। देहातों के तालाब बड़े गन्दे होते हैं। उसी के किनारे लोग पाखाना फिरते हैं और उसी में आबदस्त भी लेते हैं। सुअर और भैंस उन्हीं तालाबों में दिन भर पड़े रहते हैं। स्वच्छ जल के सुन्दर कुओं को छोड़कर हमारे बहुत से देहाती भाई उन्हीं गन्दे तालाबों में स्नान करते हैं। ऐसे गन्दे पानी से लाभ की जगह उन्हें हानि उठानी पड़ती है।

बहुत से ऐसे भी आलसी प्राणी हैं जो कउवा-स्नान करते हैं। दो-चार लोटे शरीर पर पानी डालने से ही उनका स्नान हो जाता है। यह पानी धोती के ऊपर ही भाग में गिरकर निकल जाता है। पैरों में कम पहुँचता है। ऐसे स्नान से कोई

लाभ नहीं है। कुछ लोग धोती बदलने को ही स्नान कर लेना समझते हैं। आलसी लोग जाड़े के दिनों में प्रायः इसी स्नान की शरण लेते हैं। किन्तु इन दोनों प्रकार के स्नान से कोई लाभ नहीं, दोनों त्याज्य हैं।

गरमी में दो बार और जाड़े में एक बार कम से कम स्नान करना चाहिये। नहाने के लिए शौच-क्रिया के बाद प्रातःकाल का समय सर्वश्रेष्ठ है। उस समय स्नान करने से दिन भर शरीर में एक प्रकार की फुर्ती रहती है।

अमेरिका, इङ्गलैण्ड, जर्मनी आदि देशों में स्नान का महत्व क्रमशः बढ़ रहा है। जापान देश के रहनेवाले इससे विशेष लाभ उठा रहे हैं, वहाँ के ग़रीब मनुष्य भोजन से भी अधिक महत्व स्नान को देते हैं। हिन्दुओं में तो इसका बहुत ही अधिक महत्व माना गया है। किसी शुभ काम करने के पहिले नहाना आवश्यक समझा जाता है। "भोजन स्नान करके करना चाहिये।" इस पर बहुत से पढ़े-लिखे हँसते हैं; किन्तु इस बन्धन का अर्थ यह है कि जो आलसवश स्नान नहीं करते उनको भी यह डर लगा रहता है कि बिना नहाये घर में रोटी न मिलेगी तो झख-मारकर उन्हें भी एक बार तो ज़रूर नहाना ही पड़ेगा।

ऐसा होते हुये भी अभी बहुत से हिन्दुस्तानी स्नान से लाभ नहीं उठा रहे हैं। ईश्वर ने जल यथेष्ठ परिमाण में दिया है। उसके लिए विशेष पैसे ख़र्च करने की आवश्यकता नहीं है। ऐसे प्रचुर धन का उचित उपयोग कर प्रत्येक मनुष्य को विधिवत् स्नान करके निरोग बनना चाहिये।

स्नान करने के कुछ नियमः—

(१) प्रातःकाल स्नान करना सर्वोत्तम है।

(२) स्नान ठण्डे पानी से करना चाहिये। वृद्धों और दुर्बल मनुष्यों को ठंडा पानी यदि सहन न हो तो गरम पानी से स्नान करना चाहिये।

(३) भोजन करने के तीन घण्टे बाद तक स्नान नहीं करना चाहिये। भोजन करने के एकदम पहिले भी स्नान करना अच्छा नहीं है।

(४) स्नान करने के पहिले शरीर को अँगोछे से ख़ूब रगड़ लेना चाहिये।

(५) स्नान करते करते ठंढ लगने लगे तो स्नान बन्द कर देना चाहिये।

(६) जाड़े के दिनों में किञ्चित् व्यायाम करके स्नान करना चाहिये।

(७) स्नान करते समय पहले सर को भिगोना चाहिये।

(८) स्नान करते समय खुरदरे तौलिये का व्यवहार अवश्य करना चाहिये।

(९) कभी कभी वाष्प-स्नान भी लेना चाहिये (जल-चिकित्सा के प्रकरण में वाष्प-स्नान की विधि देखिये)।

(१०) शरीर पर किञ्चित् नमी रहते हुये कपड़े पहिनने चाहिये।

(११) नहाते समय कभी कभी साबुन का भी प्रयोग करना चाहिये। सर पर आँवले का मलना साबुन से उत्तम है।

६—कपड़ों की सफ़ाई

शरीर के साथ साथ कपड़ों की भी सफ़ाई रखना अत्यन्त आवश्यक है। शरीर के छेदों से २४ घण्टे पसीना दृश्य अथवा अदृश्य रूप से निरन्तर बहता रहता है। गरमी में अधिक निकलता है और जाड़े में कम। वह कपड़ों में बराबर लगता रहता है। पसीना जब बराबर जमा होता जाता है तब कपड़ों से बदबू निकलने लगती है और वे शरीर को बड़ी हानि पहुँचाते हैं।

हमारे बहुत से देशभाई कपड़ों की सफ़ाई पर कम ध्यान देते हैं; महीनों कपड़े नहीं बदलते। त्योहारों में बहुतों को बदलने की नौबत आती है! ऐसे लोगों के शरीर में मल के कारण छोटी छोटी फुन्सियाँ होने लगती हैं और बहुत से दिन भर शरीर खुजलाया करते हैं।

शरीर के स्पर्श करनेवाले कपड़े जैसे बण्डी, बनियाइन, धोती, तौलिया, रूमाल आदि रोज़ साबुन से धोना चाहिये। अन्य कपड़े कम से कम एक सप्ताह में बदलना चाहिये।

ग़रीबों के पास बहुत कपड़े नहीं होते अतएव प्रश्न यह होता है कि वे किस प्रकार सफ़ाई रख सकते हैं? उनकी सफ़ाई रखने में कुछ विशेष परिश्रम और नियमितता की आवश्यकता है। ऐसे मनुष्यों या विद्यार्थियों के पास भी कम से कम दो कुरते, दो धोती, दो बनियाइन और एक तौलिये की ज़रूरत

अवश्य पड़ेगी। बनियाइन और धोती वे रोज़ धोवें और कुरता हर चौथे रोज़ सायंकाल साबुन से धोकर सूखने के लिये डाल दिया करें। प्रातःकाल काम के समय उन्हें साफ़ मिला करेगा।

रंगीन कपड़ों से सफेद कपड़े पहिनना अच्छा है। रंगीन कपड़ों में मैल उतना ही जमा होता है जितना सफ़ेद कपड़ों में, किन्तु रंगीन कपड़ों में मैल अधिक दिखलाई नहीं पड़ता। पहिनने वाला समझता है कि मेरा कपड़ा अभी साफ़ है, वास्तव में वह साफ़ नहीं है। साफ़ कपड़ों में मैल फ़ौरन झलकने लगता है और पहिनने वाले को कपड़ा बदलने के लिये सावधान कर देता है।

विद्यार्थियों को स्कूल के कपड़े अलग तथा खेलने और घर पर पहिनने के कपड़े अलग रखना चाहिये। स्कूल के कपड़े ४ बजे स्कूल से वापस आकर एक ओर टाँग देना चाहिये और दूसरे दिन ९½ बजे प्रातःकाल उन्हें फिर पहिनना चाहिये। एक ही कपड़ा हर जगह पहिनने से वह जल्दी मैला होता है और फटता भी जल्दी है।

लिखने का तात्पर्य्य यह है कि कपड़ों की सफ़ाई पर बराबर ध्यान देना चाहिये। जिस मनुष्य या विद्यार्थी के कपड़े जितने साफ़ रहेंगे वह उतना निरोग रहेगा।

१०—दाँतों की सफ़ाई

दाँत पाक यंत्र समूह के एक प्रधान अंग हैं। इनके द्वारा हम भोजन को अच्छी तरह चबा कर पाक-स्थली में भेजते हैं। अतएव कुछ शब्दों में दाँतों और उनकी सफ़ाई पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक मालूम होता है।

दाँत दो प्रकार के होते हैं,—(१) दूध के अथवा अस्थाई (२) पक्के अथवा स्थाई। दूध के दाँत २० होते हैं, ये ख़ूब पतले और पैने होते हैं। पक्के या स्थाई दाँतों की संख्या ३२ हैं। स्थाई दाँत समूह चार श्रेणियों में विभक्त किये गये हैं। ऊपर व नीचे की प्रत्येक पंक्ति में चार चार पतले धारदार (जिन्हें कत्ता कहते हैं), दो दो कुकुर दन्त, चार चार दोहरी दाढ़ें और सब से पीछे छः छः चौहरें होती हैं।

दाँतों की उपकारिता बहुत है :—

(१) दाँतों से हम भोजन चबा सकते हैं।

(२) इनके द्वारा हमें अवस्था निरूपण करने में सहायता मिलती है।

(३) दाँतों के रंगरूप को देखकर बहुधा चिकित्सक लोग कई प्रकार के रोगों को जान सकते हैं।

(४) दाँत अनेक वर्णों के उच्चारण में सहायक होते हैं कौन नहीं जानता कि पोपलों का उच्चारण अशुद्ध व हास्यजनक होता है।

(५) दाँतों से मुख की सुन्दरता होती है। बुड्ढे लोग भी हिलते हुए दाँत को उखड़वाना पसन्द नहीं करते। वे कहते हैं उन्हें पड़े रहने दो उखड़वाने से मुँह बुरा लगेगा।

(६) अनेक स्थानों में ये अस्त्र का काम देते हैं।

उपरोक्त ६ बातों से सब से अधिक दाँतों की उपकारिता नं० १ है अर्थात् दाँतों से हम अपना भोजन चबाते हैं। ईश्वर ने जब ३२ दाँत दिये हैं तो भोजन के प्रत्येक ग्रास को ३२ बार कुचलना चाहिये। भोजन को अच्छी तरह न चबाने से वह पाकस्थली में जाकर पाकयंत्र को उत्तेजित करता है। इस उत्तेजना के कारण बहुधा वमन भी हो जाता है। भात, दाल, रोटी आदि खाद्य पदार्थ अच्छी तरह पर न चबाने से वे टायालिन के साथ यथावत नहीं मिलते, इसीलिये अच्छी तरह परिपाक भी नहीं होते। ऐसा भोजन पाकस्थली में पहुँचने के बाद देर में पचता है और पाकस्थली को निर्बल कर डालता है। पाकस्थलो में हवा एकत्र हो जाती है, मुँह से पानी निकलता है, पेट में पीड़ा होती है और धीरे धीरे मन्दाग्नि और बदहज़मी पैदा हो जाती है।

जिनके दाँत गिर जाते हैं वे अनेक पदार्थों के स्वाद से वञ्चित हो जाते हैं और यह बेचारे जो कुछ खाते हैं सो भी अच्छी तरह परिपाक नहीं होता। दाँत विहीन बहुधा कोठे की कठिनता और पेट बढ़ जाने की बीमारी का दुःख भोगते हैं। इनको दवा खाने के पहिले दाँत बँधाने की चेष्टा करनी चाहिये।

जो दाँत हमारा इतना उपकार करते हैं उनकी विशेष देख रेख करनी चाहिये। प्रातःकाल शौच से निवृत्त होकर दाँतों को नीम की दतुइन से साफ़ करना चाहिये। नीम की दतुइन

यदि न मिले तो पाउडर, मंजन अथवा कोयले से भी काम चल सकता है। सप्ताह में दो बार कड़ुआ तेल और नमक से भी दाँत को साफ़ करना अच्छा है। कड़ुआ तेल और नमक दाँतों के कीड़ों को मारकर उनकी जड़ों को मज़बूत करते हैं।

शोक है कि बहुत से लोग दाँतों की सफ़ाई पर ध्यान नहीं देते। स्कूल के बहुत से विद्यार्थियों के भी दाँत बड़े गन्दे रहते हैं। उनके दाँतों में मैल की एक तह जमी रहती है। उसके कीड़े धीरे धीरे दाँतों को खोखला कर डालते हैं और अल्पायु ही में उनका मुँह पोपला हो जाता है।

पान खाने की प्रथा आजकल बहुत चल गई है। यह दाँतों के लिए बड़ी अहितकर है। बच्चे से लेकर बूढ़े तक पान खाते हैं। बूढ़े तो दाँतों के अभाव से खल में पान को कूच कूच कर उसका स्वाद लेते हैं। धनी लोग तो पान के बीड़े हमेशा मुँह में भरे रहते हैं। पान के साथ साथ तम्बाकू और दूसरे सुगन्धित पदार्थों का भी व्यवहार किया जाता है। कोई पूछे किस लिए? उत्तर मिलेगा केवल होठों को लाल करने के लिए। क्या अन्धेर है रुपये के रुपये ख़र्च करना! और उल्टे दाँतों को कमज़ोर और काला करना। कुछ लोग कहते हैं कि हम मुख-शुद्धि के लिए पान खाते हैं। मुख-शुद्धि तो इलायची, जावित्री, लवङ्ग आदि से भी तो हो सकती है तो फिर पान ही से क्यों की जाय। पान से मुख-शुद्धि का बहाना एक आदत मात्र है।

बहुत बरफ पीने और बहुत गरम गरम भोजन करने से भी दाँत कमज़ोर हो जाते हैं। अतएव दाँतों को कमज़ोर करने वाले पदार्थों को छोड़कर इन्हें सफाई द्वारा सुन्दर और सुदृढ़ करना चाहिये।

११–गहरी निद्रा

जब रात में नींद नहीं आती तो फिर तबियत प्रायः कैसी अस्वस्थ रहती है। निद्रा आँखों के सामने छाई रहती है और किसी काम के करने में जी नहीं लगता। जब तक उस निद्रा की पूर्ति दूसरी रात में नहीं होती, तब तक तबीयत बेचैन सी रहती है। अतः स्वास्थ्य ठीक रखने के लिये गहरी निद्रा का आना भी अत्यन्त आवश्यक है।

अंगरेज़ी में एक कहावत है जिसका भाव यह है कि "जल्दी सोने और उठने से मनुष्य स्वस्थ, धनवान् और बुद्धिमान होता है।" प्रकृति की ओर एक दृष्टि डालने से इसकी सत्यता प्रमाणित हो जाती है। सायंकाल बसेरा लेने के लिए पक्षियों का समुदाय रोज़ ही उड़ता हुआ दिखलाई पड़ता है। और चार बजे सबेरे उनका बोल फिर सुनाई देने लगता है। जंगल के पशुओं की भी यही अवस्था है। अतएव ९ और १० बजे के बीच हद से हद १० बजे तो प्रत्येक तरुण पुरुष को अवश्य सो जाना चाहिये और प्रातः ४ बजे ब्राह्म मुहूर्त में उठ जाना चाहिये।

किस पुरुष अथवा स्त्री को कितने घण्टे तक सोने की आवश्यकता है यह उसकी अवस्था और परिस्थिति पर निर्भर है। एक तरुण पुरुष को कम से कम ६ घण्टे से ७ घण्टे तक सोना चाहिये; बच्चों और बूढ़ों को ९, १० घंटे तक सोना चाहिये। जिन लोगों को शारीरिक परिश्रम अधिक करना पड़ता है उन्हें मानसिक परिश्रम करने वालों से अधिक सोने की आवश्यकता है।

हमेशा ऐसे स्थान में सोना चाहिए जहाँ हवा बराबर आती जाती रहे। कमरे से बरामदे में सोना अच्छा है। कमरे में यदि सोया जाय तो चारों ओर की खिड़कियों को खोल देना चाहिये। चिराग़ जलाकर और कमरा बन्द करके कभी नहीं सोना चाहिये। एक कमरे में जितने कम आदमी सोवें उतना ही अच्छा है। बड़े बड़े शहरों में जहाँ मकानों का किराया अधिक लगता है और देहातों में भी एक ही कमरे में प्रायः बहुत आदमी एक ही साथ सोते हैं—ऐसा करना बुरा है। साँस लेने के लिए स्वच्छ हवा न मिलने के कारण प्रायः ये रोगी रहते हैं। पुरुष और स्त्री को भी अलग अलग सोना चाहिये।

सोते समय मुँह ढाँपना नहीं चाहिये। मुँह ढाँपने से मुँह की निकली हवा उसी चद्दर या रज़ाई के भीतर रह जाती है और साँस द्वारा वही बराबर आती जाती रहती है, इससे स्वास्थ्य बिगड़ने की सम्भावना रहती है। चाहे जाड़ा हो चाहे गरमी, हर ऋतु में सदैव मुँह खोलकर सोना चाहिये।

दिन में जो कपड़े पहने जाते हैं, उनका प्रयोग रात में नहीं होना चाहिये। सोने के कपड़े अलग होने चाहिये। एक मामूली कुर्ता और एक धोती या पायजामा काफी है। उनको प्रातः नहाते समय रोज़ धोना चाहिये।

ब्रह्मचारियों को तख्त पर और साधारण गृहस्थों को चारपाई पर सोना चाहिये। बिछौना साधारण होना चाहिये, एक बीते ऊँचे गद्दे की आवश्यकता नहीं है। जितना मुलायम बिछौना होगा उतना ही अधिक काम-वासना जागृत होगी। यदि मच्छड़ हों तो मसहरी का प्रयोग करना चाहिये। तकिया

बहुत ऊँची न होनी चाहिये। बिछौना साफ़ होना चाहिये। बिछौने के ऊपर एक चादर भी होनी चाहिये। चादर रहने से केवल वही मैली होगी और नीचे का बिछौना साफ़ रहेगा। चद्दर और तकिये की खोली मैली होने पर बराबर बदलनी चाहिये।

बिछौना रोज़ धूप में डालना चाहिये। यदि रोज़ न डाला जा सके तो सप्ताह में एक बार अवश्य ही डालना चाहिये।

सोने के लिए ईश्वर ने रात बनायी है। अतएव सोना रात में चाहिये। दिन में सोना हानिकारक है। बहुत से ऐसे भी मनुष्य हैं, जो दिन में भोजन करने के उपरान्त कई घण्टे सोते हैं। गरमी के दिनों में तो १२ बजे से किवाड़ बन्द करके ४ बजे शाम तक सोते रहते हैं। ऐसे मनुष्यों को स्मरण रखना चाहिये कि इस प्रकार से सोकर वे अपना स्वास्थ्य अपने हाथ बिगाड़ते हैं। भोजन के पश्चात् एक घण्टे तक विश्राम लेना चाहिये न कि सोना चाहिये। सोने और विश्राम लेने में अन्तर है। दिन में सोने से रात की भी निद्रा भङ्ग होती है।

दिन भर परिश्रम करने के अनंतर १० बजे तक सो जाने वाले और ४ बजे उठनेवाले मनुष्य को गहरी नींद आनी चाहिये। गहरी नींद से भाव यह है कि उसे कोई स्वप्न दिखाई नहीं पड़ते। सोने के समय की माप भी उसे ज्ञात नहीं होनी चाहिये। १० बजे तक सोने में उसे मालूम होता है कि मैं तो अभी सोया था।

बहुत से ऐसे पुरुष हैं जिन्हें गहरी नींद नहीं आती। वे बहुधा रात में स्वप्न देखते रहते हैं। उनकी अवस्था ऐसी होती है कि हम न तो यह कह सकते हैं कि वे जाग रहे हैं, और न यही

कह सकते हैं कि वे सो रहे हैं। उनको निद्रा न आने के कुछ कारण होते हैं। जिस मनुष्य को रात-दिन किसी बात की चिन्ता लगी रहती है, उसे गहरी नींद नहीं आती है। जो लोग रात में नाटक-सिनेमा देखने के लिए जाते हैं, उन्हें भी निद्रा नहीं आती; क्योंकि उनके सोने-जागने का समय निश्चित नहीं रहता है। जिनका चित्त हमेशा विषयों की ओर भटका करता है, उन्हें भी निद्रा नहीं आती है। जो लोग रात में ठूँस ठूँस कर भोजन कर लेते हैं, उन्हें भी गहरी निद्रा नहीं आती। जो लोग दिन को परिश्रम नहीं करते, और सो सो कर दिन बिताते हैं उन्हें भी रात में गहरी नींद नहीं आती। गहरी नींद न आने से मनुष्य का मस्तिष्क क्रमशः बिगड़ता जाता है और वह अल्पायु में परलोकगामी होता है।

अतएव प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि वह जिस प्रकार हो, अपना स्वास्थ्य अच्छा रखने के लिए गहरी नींद सोने का हर प्रकार का प्रयत्न करे।

निद्रा के सम्बन्ध में कुछ बातें

१—जहाँ तक हो सके हवादार स्थान में सोना चाहिये। यदि कमरे में सोये तो उसके सब किवाड़ और खिड़कियाँ खोल देना चाहिये।

२—मुँह ढाँककर कभी न सोना चाहिये।

३—सदैव अकेला सोना चाहिये। और सोते समय श्वास नाक से लेना चाहिये।

४—हमेशा करवट के बल सोना चाहिये।

५—सोने के ३ घण्टे पहले भोजन कर लेना चाहिये । रात का भोजन हल्का होना चाहिये ।

६—सोने के पूर्व पेशाब कर लेना चाहिये । और हाथ पैर ठण्डे पानी से धो लेना चाहिये ।

७—सोने के पूर्व सब चिन्ताओं को छोड़ कर थोड़ा ईश्वर का ध्यान कर लेना चाहिये ।

८—९-१० बजे के बीच सोना और ४-५ बजे के बीच जाग जाना चाहिये । तरुण मनुष्यों को ६ से ७ घण्टे तक सोना चाहिये ।

———

१२—मल-विसर्जन

'मल-विसर्जन' के केवल सुनने ही से बहुतों को घृणा पैदा होगी और बहुत से यह कहने लगेंगे कि इस विषय को इस पुस्तक में स्थान न मिलना चाहिये। किन्तु मेरी समझ में ऐसा विचार करना भारी भूल है। इस विषय की ओर ध्यान न देने के कारण ही तीन-चौथाई मनुष्य नाना प्रकार की शारीरिक और मानसिक व्यथाओं से पीड़ित हो रहे हैं।

मुँह से लेकर पाखाने के रास्ते तक एक बड़ी नाली चली गई है, उसी के द्वारा हम भोजन ग्रहण और विसर्जन करते हैं। मुँह में डाला हुआ भोजन पहिले मेदे में गिरता है। वहाँ से वह फिर छोटी अँतड़ियों में जाता है, छोटी अँतड़ियों में पाचन-क्रिया पूर्ण रूप से हो जाती है। और यहीं पर भोजन से पोषक द्रव्य बन कर ख़ून में मिल जाता है शेष बचा हुआ मल एक कूट द्वार (trap door) से बड़ी अँतड़ियों में धीरे धीरे जाता है और वहाँ से गुदा के रास्ते वह फिर बाहर निकल जाता है।

प्रत्येक मनुष्य को दिन में दो बार शौच अवश्य जाना चाहिये। एक तो प्रातः और दूसरे सायङ्काल, प्रातःकाल चारपाई से उठते ही और सायङ्काल क़रीब ४ या ५ बजे। शहरों में लोग बने हुये पाखाने में शौच जाते हैं और देहातों में हवादार खुले मैदानों में। खुले मैदान में शौच जाना अत्यन्त लाभदायक है।

शहरों के घरों में प्रायः एक पाखाना होता है। उसी में घर भर के प्राणी पाखाना फिरते हैं। इसलिये पाखाने का स्थान

बड़ा गन्दा हो जाता है। कई व्यक्तियों के पेशाब और पाखाने से उसमें से निरन्तर दुर्गन्धि निकला करती है। यदि भङ्गी ने कहीं साफ़ न किया तो यह दुर्गन्धि और भी अधिक बढ़ जाती है। इससे केवल पाखाने जानेवाले ही को कष्ट नहीं होता, किन्तु कभी कभी घर भर के सब प्राणियों को तक़लीफ़ होती है।

पाखाने से हवा के साथ कीटाणु उड़ते रहते हैं। ये कीटाणु श्वास के द्वारा शरीर के भीतर जाकर हानि पहुँचाते हैं। एक ही पाखाने में जानेवाले मनुष्यों की प्रकृति प्रायः भिन्न होती हैं। उनमें बहुत से रोगी हो सकते हैं। अतएव उनके मल के कीटाणु उनको तो हानि पहुँचाते ही हैं; किन्तु दूसरे तन्दुरुस्त प्राणियों को भी रोगी बना सकते हैं।

ग्रामीण लोग बाहर खुले मैदान में पाखाना जाते हैं। उनको किसी प्रकार की दुर्गन्धि का कष्ट नहीं उठाना पड़ता है। एक व्यक्ति के दूषित कीटाणु भी दूसरे को हानि नहीं पहुँचा सकते। पाखाना साफ़ होता है। निरन्तर उन्हें प्राणप्रद वायु (Oxygen) मिलती रहती है। परिणाम यह होता है कि खुला पाखाना होने से उनका स्वास्थ्य साधारणतया अच्छा रहता है।

शहर के रहने वालों को अपने पाखानों की व्यवस्था बदलनी चाहिये। जो लोग शहर के बाहर पाखाने जा सकते हैं, उन्हें तो पाखाने बाहर ही जाना चाहिये। जो नहीं जा सकते हैं, उन्हें अपने घर में ही कम से कम दो पाखानों का प्रबन्ध करना चाहिये। एक औरतों के लिए और दूसरा पुरुषों और बच्चों के लिए। यदि घर में स्त्री और पुरुषों की संख्या अधिक हो तो दो

से भी अधिक पाखानों की व्यवस्था करनी चाहिये। पाखाने ख़ूब साफ़ हों। उनको रोज़ धुलाया जाय और फिनायल छिड़का जाय। भङ्गी को ताकीद कर दी जाय कि दो तीन बार पाखाने को साफ़ कर जाया करे।

देहात के लोग बाहर पाखाने जाते तो हैं; किन्तु प्रायः वे किसी तालाब के किनारे जाते हैं और उसी तालाब में आबदस्त लेते हैं। परिणाम यह होता है कि वहाँ दुर्गन्धि फैलने लगती है और तालाब का पानी दूषित हो जाता है। उसी दूषित पानी को ग्राम के पशु पीते हैं और उसी में ग्राम के बहुत से स्त्री-पुरुष स्नान करते हैं इससे पशुओं और ग्रामवासियों के स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है। अतएव देहात से थोड़ी दूर खेतों में ग्रामीण भाइयों को शौच जाना चाहिये।

महात्मा गांधी ने अपनी पुस्तक 'आरोग्य दिग्दर्शन' में बाहर पाखाना जाने वाले से अनुरोध किया है कि वे एक गड्ढा खोद कर खेत में पाखाना जायँ और शौच होने के अनन्तर उसे मिट्टी से पूर दिया करें - यह सिद्धान्त वास्तव में बड़ा महत्वपूर्ण है। जो लोग इसका पालन कर सकते हैं, वे अवश्य करें। ऐसा करने से पाखाने की दुर्गन्धि फैल कर इर्दगिर्द के वायु को दूषित न करेगी और वह गड़ा हुआ पाखाना खाद का काम करके खेत की पैदावार में भी अधिक सहायता देगा।

सब काम छोड़ कर पाख़ाना नियत समय पर जाना चाहिये। उसे कदापि रोकना नहीं चाहिये। किन्तु प्रायः देखा जाता है कि काम अधिक होने के कारण अथवा योंही मित्रों के साथ विनोदपूर्ण बातचीत करने के कारण पाखाना जाने में देरी हो जाती है। देरी होने से पाखाने की इच्छा बन्द हो जाती है

और मल बड़ी अँतड़ी के बाजुओं में कड़ा होकर चिपट जाता है। यदि यही क्रम जारी रहा तो निरन्तर मल चिपटता रहता है और पाखाने का स्वाभाविक रास्ता छोटा पड़ जाता है और उसमें से जितना नया मल निकलना चाहिये नहीं निकलता। वह बाजुओं में लगता जाता है अन्त में मनुष्य को कब्ज़ (बद्ध-कोष्ठ) हो जाता है ठीक समय पर पाखाना न जाने से बद्ध-कोष्ठ तो होता ही है, किन्तु इसके और भी दूसरे कारण हैं। जो आलस्यवश केवल एक बार पाखाना जाते हैं, वे प्रायः कब्ज़ के शिकार होते हैं। काफी पानी न पीने और मसालेदार भोजन से भी कब्ज़ होता है। वीर्य को अधिक नाश करने से भी पाचन क्रिया खराब होकर कब्ज़ियत पैदा कर देती है। व्यायाम के अभाव से भी कब्ज़ की सम्भावना हो सकती है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिन साधनों से अनपच होता है वे सब कब्ज़ के उत्पन्न करनेवाले कारण कहे जा सकते हैं।

अमेरिका के प्रसिद्ध डाक्टर टर्नर ने २८४ मनुष्यों की मृत्यु का कारण बतलाते हुए कहा है कि उनमें से २८ मनुष्यों को छोड़ कर बाक़ी सब कब्ज़ की बीमारी से मरे। उनकी बड़ी अँतड़ियाँ फाड़ कर देखी गईं तो मालूम हुआ कि वे पत्थर की तरह कठिन हो गई हैं और उनमें सूखा काला मल भरा हुआ है। अतएव यदि हम बद्ध-कोष्ठ को सब बीमारियों का कारण कहें तो इसमें कुछ अनुचित नहीं है।

बड़ी अँतड़ियों में सञ्चित मल विषमय होने के कारण शरीर भर को अहितकर होता है; रोगोत्पादक कीड़े उसमें पड़ने लगते हैं और उनकी संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। कीड़े

फैल कर शरीर भर में दौड़ने लगते हैं और फिर मलेरिया, मन्दाग्नि, पित्त, प्रकोप और नाना प्रकार के स्पर्शजन्य और मूत्र-सम्बन्धी रोग उत्पन्न होने लगते हैं। अतएव प्रत्येक मनुष्य को कब्ज़ से बचना चाहिये।

खाने, पीने की पद्धति ठीक रखने, व्यायाम करने, ठीक समय पर दोनों समय शौच जाने और वीर्य-रक्षा करने से कब्ज़ दूर हो सकता है। किन्तु जिन्हें कब्ज़ पुराना है और जो अज्ञान वश प्राकृतिक नियमों का बराबर उल्लंघन करते रहते हैं उनके कब्ज़ दूर करने के कुछ साधन बतलाने की आवश्यकता है।

जुलाब लेने से पुराना मल निकलता है, किन्तु जुलाब अप्राकृतिक होने के कारण अधिक प्रशंसनीय नहीं है। कभी कभी जुलाब से शरीर को हानि पहुँचती है। अतएव जुलाब छोड़ कर दो प्राकृतिक साधनों का अवलम्ब लेना चाहिये।

कब्ज़ से पीड़ित मनुष्य को प्रायः उपवास करना चाहिये, यहाँ तक कि फल भी त्याज्य समझना चाहिये। थोड़ा थोड़ा करके पानी ख़ूब पीना चाहिये, भोजन छोड़ने से अँतड़ियाँ साफ़ होंगी और पानी अधिक पीने से बड़ी अँतड़ियों का सूखा मल आर्द्र होकर गुदा के रास्ते बाहर निकल जायगा।

कब्ज दूर करने का एक और दूसरा तरीक़ा है और वह है, एनिमा (Enema) का लेना। हिन्दुस्तान के लोग बहुत पहले से इसका प्रयोग करते आये हैं। वास्तव में अति प्राचीन समय के एक जङ्गली जाति के एक मनुष्य ने इसकी खोज की थी। उसने जंगल में इबिन (Iben) नामक एक पक्षी को देखा कि वह बीमारी के कारण दुबला-पतला हो रहा था वह डरता डरता एक नदी के किनारे पहुँचा। वहाँ अपनी लम्बी

चोंच से उसने नदी का पानी अपनी गुदा में डालना शुरू किया, वह कुछ दिनों तक ऐसा ही करता रहा। अन्त में स्वस्थ होकर उड़ गया। इस जंगली मनुष्य ने नरकट की एक पिचकारी बना कर अपनी जाति के रोगी बुड्ढों पर गुदा के द्वारा पानी चढ़ाने की व्यवस्था की। वे चंगे हो गये और फिर कई वर्षों तक संसार का सुख भोगते रहे।

योग शास्त्र में गुदा द्वारा पानी चढ़ाने को बहुत अधिक महत्व दिया गया है। प्राचीन काल के लोग बिना पिचकारी के गुदा द्वारा पानी हठ योग की क्रिया से चढ़ा कर अँतड़ियों को साफ़ कर लिया करते थे। किन्तु हम लोग उस क्रिया को प्रायः भूल से गये हैं। अतएव उसके स्थान में एनिमा का प्रयोग करना भी कोई बुरा नहीं है। डाक्टरी के कारण एनिमा का तरीक़ा अब बिल्कुल आसान हो गया है।

एनिमा लेने के लिए एक छोटे टीन के बर्तन की आवश्यकता है, जिसके नीचे छेद हो और उसमें रबर की एक लम्बी नली लगी हो। रबर की नली के दूसरे सिरे पर पिचकारी लगी हो। सम्भव है इस प्रकार केवल वर्णन से यन्त्रों का पता न लगे। अतएव किसी डाक्टर से यन्त्रों की शोध कर लेनी चाहिये।

एक पलंग पर बाँये हाथ को पाटी में रख कर उसी करवट लेट रहो। एनिमा के पात्र को साधारण चार पाँच .फ़ुट ऊचाई पर टाँग दो। फिर जितने पानी का एनिमा लेना हो उतना गुनगुना पानी उसी में भर दो। तदनन्तर गुदा के भीतर किंचित् तेल के सहारे पिचकारी को दाहिने हाथ से ले जाओ। थोड़ा पानी भीतर जाने से शौच की इच्छा मालूम होगी, उस

समय चाभी से पिचकारी का मुँह बन्द कर पानी का प्रवाह रोक दो। शौच यदि जोर से लग जाय तो उठकर उससे निवृत हो लो और फिर शेष पानी चढ़ाओ।

जिनको पुराना कब्ज़ हो उनको कुछ दिनों तक रोज़ एनिमा के लेने की आवश्यकता पड़ेगी। शुरू में दो पिन्ट पानी चढ़ाना चाहिये। इसके पश्चात् एक पिन्ट रोज़ बढ़ाकर ६ पिन्ट तक पहुँचा देना चाहिये। शुरू में किसी डाक्टर से एनिमा लेना अच्छा होगा। साधारण मनुष्य भी ४ पिन्ट का एनिमा वर्ष में दो बार लिया करें तो अच्छा है। नाज़ुक प्रकृति वालों को एक पिन्ट का ही एनिमा शुरू में काफी होगा।

गुदा द्वारा चढ़ाया हुआ पानी कूट द्वार तक पहुँच जाता है। इस द्वार की बनावट ऐसी उत्तम है कि पानी ऊपर पेट में नहीं जा सकता। वह पानी बड़ी अँतड़ी के कोने कोने के मल को धोकर गुदा द्वारा बाहर निकाल देता है और अँतड़ियाँ फिर बिल्कुल स्वच्छ हो जाती हैं।

एनिमा रात्रि में सोने के पहिले लेना उत्तम है लेकिन प्रातः-काल भी यदि लिया जाय तो कोई हर्ज नहीं। इस बात का डर बिल्कुल न करना चाहिए कि ५ फ़ुट लम्बी बड़ी अँतड़ियों में ६ पिन्ट तक पानी किस प्रकार भरा जा सकता है। पानी गुनगुना होना चाहिये और उसमें हल्का साबुन का फेन मिला लेना चाहिये। साबुन की सहायता से अँतड़ियाँ और भी अधिक स्वच्छ हो जायँगी।

एनिमा लेने से बड़ी अँतड़ियों का कठिन और काला मल बाहर निकल जाता है। इस मल से बड़ी दुर्गन्ध निकलती है।

ऐसे ज़हरीले मल के पेट में रहने से कितनी हानि हो सकती है, इसका विचार पाठक स्वयं कर लें। एक बार पूर्ण रीति से अँतड़ियों को एनिमा द्वारा साफ़ कर देने पर रोज़ का शौच आप से आप साफ़ होने लगेगा।

रोज़ एनिमा का लेना भी हानिकारक है। ऐसा करने से एक प्रकार की आदत सी पड़ जाती है और बिना एनिमा के फिर शौच साफ़ नहीं होता। सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि शरीर को स्वस्थ रखने के लिए मनुष्य को प्रकृति के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करना अत्यन्त आवश्यक है। किन्तु जैसी स्थिति इस समय लोगों की है, उससे तो यही प्रतीत होता है कि सौ में बड़ी मुश्किल से ५ मनुष्य होंगे जिनका जीवन प्राकृतिक हो, शेष ९५ फ़ी सदी मनुष्यों को तो वर्ष में दो बार एनिमा लेकर पेट की सफ़ाई अवश्य कर लेनी चाहिये।

एनिमा द्वारा अँतड़ियों को साफ़ कर देने से मनुष्य में नवीन ख़ून उत्पन्न होता है। उसकी त्वचा कोमल हो जाती है और उसके मुँह में एक विशेष प्रकार की आभा झलकने लगती है। प्रत्येक मनुष्य को चाहिये कि व्यर्थ में डाक्टरों और वैद्यों की औषधियों पर रुपया न ख़र्च करके इस आधुनिक योगिक क्रिया से लाभ उठावें।

———

१३—स्वास्थ्य पर मन का प्रभाव

मन का प्रभाव स्वास्थ्य पर विशेष रूप से पड़ता है। अभी एक पुरुष अपने मित्रों के साथ वार्तालाप कर रहा है, खिल-खिला कर हँस रहा है, सहसा उसे समाचार मिलता है कि तुम्हारा एकलौता पुत्र मर गया। वह फूट फूट कर रोने लगता है, उसका मन प्रफुल्लित रहने की जगह दुखी हो जाता है। दूसरी ओर हम एक दरिद्र पुरुष को देखते हैं जिसे आधे पेट खाकर अपना और अपने घराने का गुजारा करना पड़ता है। जिसके लड़कों के पास यथेष्ट कपड़े भी पहिनने को नहीं हैं, यदि सहसा उसे एक लाख रुपया मिल जाय तो वह फूला नहीं समाता। वह और उसके लड़के अब मोटे पड़ जाते हैं।

अतएव मन के दुखी रहने से शरीर दुखी और मन के सुखी रहने से शरीर सुखी रहता है। चिन्ता एक ऐसी बुरी चीज़ है जो मनुष्य के शरीर को निरन्तर खाया करती है। क्या छोटे क्या बड़े, क्या दरिद्र क्या धनवान, एक न एक चिन्ता सब के पीछे लगी हुई है। विद्यार्थियों को परीक्षा में उत्तीर्ण होने की अधिक चिन्ता होती है। जिस समय परीक्षा के लिए केवल २, ३ महीने शेष रह जाते हैं उस समय ज़रा उनकी सूरतों को देखिये। ऐसा मालूम होता है कि ये अभी रोगशय्या से उठे चले आ रहे हैं। उनका शरीर पीला और निर्बल हो जाता है। अमीरों के पास खाने को काफ़ी है तो बहुतों के सन्तान नहीं होता और उसी चिन्ता में वे २४ घण्टे

घुला करते हैं। अतएव मन से चिन्ता एकदम हटाकर उसे सदैव प्रसन्न रखना चाहिये।

क्रोध का भी शरीर पर बड़ा बुरा परिणाम होता है। क्रोध करने वाले के ख़ून में विष उत्पन्न होता है। अमेरिका प्रदेश के एक डाक्टर ने प्रयोग करके देखा है कि क्रोध करने वाले का ख़ून छोटे-छोटे जन्तुओं पर पिचकारी से चढ़ाया गया और वे तुरन्त मर गये। हमारे बहुत से हिन्दुस्तानी भाई भोजन करते समय विशेषकर क्रोध करते हैं। कभी अपनी स्त्री पर बिगड़ते हैं कि रोटी अच्छी नहीं हुई और कभी नौकर पर बिगड़ते हैं कि बर्तन ठीक साफ़ नहीं हैं। दिन भर तो शान्त रहते हैं किन्तु न मालूम क्यों उन्हें भोजन के ही समय क्रोध उत्पन्न होता है। ऐसे पुरुष अच्छा भोजन करते हुये भी सदैव दुर्बल रहते हैं। भोजन का सार विष रूप में परिणत हो जाता है और उससे उनके शरीर को कोई लाभ नहीं पहुँचता। अतएव प्रत्येक दशा में मनुष्य को क्रोध छोड़ना चाहिये।

काम, मोह, लोभ मत्सर आदि विकारों का भी ऐसा ही परिणाम शरीर पर पड़ता है। ये भी सब ख़ून को दूषित करते हैं। देखिये, भिन्न-भिन्न प्रसिद्ध डाक्टर इन विकारों के परिणाम के विषय में क्या कहते हैं।

प्रोफ़ेसर एलमर गेटस कहते हैं कि "मैंने प्रयोग करके देखा है कि क्रोधी, कामी, लोभी, मत्सरी व दूसरे क्षुद्र मनोविकार शरीर में विषाक्त द्रव्य उत्पन्न करते हैं व प्रसन्नता तथा दूसरे उच्च विचार अधिक तादाद में जीवन शक्ति उत्पन्न करते हैं।"

डाक्टर ड्यूक कहते हैं—"भय और चिन्ता से लोग पागल हो जाते हैं, उनके दाँत में कीड़े पड़ जाते हैं और बाल सफ़ेद हो जाते हैं।"

सर जार्ज पेटेज कहते हैं—"चिरकाल चिन्ता करने से मनुष्य के शरीर में नाना प्रकार के भीषण रोग उत्पन्न होते हैं।"

अतएव मनोविकारों को छोड़ कर मनुष्य को सदा सर्वदा प्रसन्न रहना चाहिये। शरीर के लिये मन की प्रसन्नता एक महान औषधि है। बहुत से डाक्टर औषधि न करके केवल रोगी को प्रसन्न रख कर उसे चंगा कर देते हैं।

मानसिक प्रसन्नता लाने के लिये सब से पहिली आवश्यक बात यह है कि मनुष्य सदैव किसी न किसी काम में लगा रहे। अंगरेज़ी में कहावत है। "Constant occupation prevents temptation" सदैव काम में लगे रहने से मनोविकार पैदा नहीं होने पाते। ख़ाली बैठने ही से नाना प्रकार के बुरे विचार उत्पन्न होते हैं। विद्यार्थी के लिये हम निम्नलिखित दिनचर्य्या, तजवीज़ करेंगे:—

४ से ६ तक—शौच के बाद पढ़ना।

६ से ७½ तक—स्नान, व्यायाम और ईशोपासना।

७½ से ८½ तक—अध्ययन।

८½ से ९½ तक—भोजन और विश्राम।

१० से—स्कूल।

३½ से ४½ तक—विश्राम।

४½—से ५½ तक—अध्ययन।

५½—७ तक—खुली हवा में टहलना।

७—८ तक—भोजन विश्राम।

८—९ तक—अध्ययन।

९—४ तक—सोना।

दूसरा साधन मन को प्रसन्न करने का ईश्वर की उपासना और धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय है। ईश्वर के साथ बातचीत करने का नाम उपासना है और यदि वास्तव में हम उस पर विश्वास करते हैं तो प्रत्येक बात में, एकान्त में, उससे परामर्श करना, और उसकी सहायता चाहना हमारा धर्म है।

ईश्वर हमारे चारों ओर है। वह ज़र्रे-ज़र्रे में उपस्थित है। उसकी उपासना करते करते जब हमें उसकी उपस्थिति का ज्ञान होगा तो हम बहुत से उन पापों से बचेंगे जो हम एकान्त में कर डालते हैं।

एकान्त में हम ईश्वर से अपने सब समाचार कहें। हम क्या क्या करना चाहते हैं, हमारी क्या क्या महत्वाकांक्षायें हैं, किन किन बातों की हम आशा कर रहे हैं, यह सब हम उससे उसी प्रकार कहें जिस प्रकार हम अपने एक परम मित्र से कहते हैं किन्तु हमें इस बात को आशा छोड़ देनी चाहिये कि जो जो हम उससे कहेंगे उन सब में हमें सफलता प्राप्त होगी। दो देश आपस में लड़ते हैं, दोनों ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि जीत हमारी हो, किन्तु दोनों की जीत नहीं होती। ईश्वर वास्तव में उन्हीं बातों में हमें सफलता देता है जिसमें यह

हमारा हित समझता है। अतएव असफल होने पर उस पर कुपित होकर प्रार्थना करना हमें छोड़ना नहीं चाहिये।

जो पुरुष, पुत्र, धन और राज्य के लिये ईश्वर से प्रार्थना करता है, वह स्वार्थी है। ये तो हमें आप से आप अधिक काम मिलते रहेंगे। वास्तव में तो हमें उससे पवित्रता, सच्चाई, ईमानदारी, प्रेम, त्याग, शक्ति आदि गुणों की भिक्षा माँगनी चाहिये जिनके मिलने से पुत्र-धन आप से आप मिलेंगे, न केवल पुत्र और धन बल्कि मोक्ष भी प्राप्त होगा जो सब साधनों का निष्कर्ष है।

धार्मिक ग्रन्थों के पढ़ने से भी मनोविकार दूर होते हैं। प्रत्येक विद्यार्थी को तुलसीकृत रामायण और गीता का अध्ययन करना चाहिये। दोनों पुस्तकें महत्वपूर्ण हैं। कितने शोक की बात है कि संसार के और सब कामों में तो हम अधिक से अधिक समय देते हैं किन्तु ईश्वर की प्रार्थना और ग्रन्थों के स्वाध्याय में हम कुछ भी समय नहीं देते। कम से कम पौन घण्टे तो अवश्य ही देना चाहिये।

———

१४—ब्रह्मचर्य्य

स्वार्थ और परमार्थ की सिद्धि के लिये शरीर का नीरोग रखना अत्यन्त आवश्यक है। शरीर की नीरोगता बहुत कुछ खान-पान, रहन-सहन तथा आर्थिक दशा इत्यादि बातों पर निर्भर है। किन्तु उसका सब से अधिक अंश ब्रह्मचर्य्य रहने पर निर्भर है। पौष्टिक पदार्थों का भोजन करने वाला व्यक्ति इतना बलिष्ट नहीं हो सकता जितना रूखा सूखा अन्न खाने वाला, लेकिन ब्रह्मचर्य्य का धारण करने वाला एक साधारण मनुष्य बलिष्ठ हो सकता है।

सब प्रकार से वीर्य्य की रक्षा करना और उसे नष्ट होने से बचाने का नाम ही ब्रह्मचर्य्य है। ब्रह्मचर्य्य ही सब आश्रमों की नीव है। इसी कारण प्राचीन समय में सब से अधिक जोर ब्रह्मचर्य्य ही पर दिया जाता था। ब्रह्मचर्य्य की रक्षा के लिये ही बड़े बड़े ऋषिकुल और गुरुकुल खोले जाते थे, जिनमें राजा-रंक, छोटे-बड़े सब प्रकार के मनुष्यों की संतान एक साथ २५ वर्ष की आयु तक रह कर शिक्षा उपलब्ध करती थी और उन्हीं गुरुकुलों से भीष्म, अर्जुन, ऐसे योद्धा निकलते थे, जिनकी वीरता की प्रशंसा आज भी सब प्रकार से लोग मुक्तकण्ठ से करते हैं।

आजकल अब वीर्य्य का महत्व केलल पुस्तकों में रह गया है। लोग अपने जीवन में इसका महत्व नहीं दिखलाते। इसलिये उनका शरीर सदैव रोग ग्रसित रहता है और उनको

आत्मा कमज़ोर रहती है। वे किसी काम को चित्त लगा कर अंत तक नहीं कर सकते। बड़े बड़े कामों के करने का उनका साहस नहीं होता, और १०० वर्ष जीवित रहने की जगह वे अल्पकाल ही में काल के कराल गाल में प्रवेश करते हैं।

संसार में आजकल जितने महान पुरुष, परोपकारी महात्मा हुए हैं वे क़रीब सभी ब्रह्मचारी अथवा यत्नपूर्वक वीर्य्य की रक्षा करने वाले थे। जिन बड़े बड़े ऋषियों ने अध्यात्म विद्या पर बड़े बड़े गूढ़ ग्रन्थ लिखे हैं, जिन बड़े बड़े योद्धाओं ने संग्राम भूमि में विजय प्राप्त की है उनमें से प्रायः सभी वीर्य्यवान पुरुष थे।

मनुष्य जो कुछ खाता है पाकस्थली में पहुँच कर उसका रस बनता है। रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से अस्थि, अस्थि से मज्जा और मज्जा से वीर्य्य अथवा शुक्र की उत्पत्ति होती है। वही शुक्र शरीर की कान्ति और जीवन का आधार है। वह शरीर भर में व्याप्त है और शरीर की रक्षा का मुख्य साधन है।

मनुष्य की मेधाशक्ति, स्मरणशक्ति, विवेक और ज्ञान इत्यादि का मूल, वीर्य्यधारण ही है। आजकल स्कूल और कालिजों में भी जो विद्यार्थी ब्रह्मचर्य्य का पालन कर विद्याभ्यास करते हैं वे अन्य विद्यार्थियों से अधिक बलिष्ठ और प्रतिभाशाली देखे जाते हैं। वीर्य्य की रक्षा करने वाले मनुष्य की देह सदैव चुस्त और फुर्तीली रहती है। हर एक काम करने में उसे उत्साह और प्रसन्नता होती है। वह जल्दी किसी काम से घबड़ाता नहीं है। उसका शरीर लावण्यमय रहता है। उस पर लोगों की श्रद्धा होती है और वह दूसरों पर अपना प्रभाव डाल सकता है।

वीर्य का इतना महत्व होते हुए भी लोग उसकी रक्षा की परवाह नहीं करते। हमारे होनहार विद्यार्थी लड़कपन से ही स्वाभाविक अथवा अस्वाभाविक उपायों द्वारा वीर्य्य का नाश करना आरम्भ कर देते हैं। उनका विवाह लड़कपन में कर दिया जाता है जिसमें कच्ची ही अवस्था में वे अपना सारा बल खो बैठते हैं। दूसरे १५ फ़ीसदी हस्त-मैथुन द्वारा वीर्य्य को नाश करते हुये देखे जाते हैं।

हस्त मैथुन मनुष्य जाति के लिये कितना अनिष्टकारी है और किस प्रकार यह मनुषत्व का नाश करता है इनका वर्णन लेखनी द्वारा नहीं हो सकता। आजकल चारों ओर जो तरह तरह की बीमारियाँ दिखलाई पड़ती हैं उनका प्रधान कारण यह बुरी आदत है। इसी के कारण आजकल अधिकांश मनुष्य क्षीणकाय, दुर्बल, जर्जर, मानसिक शक्ति से शून्य और ज्ञान तथा बुद्धि से रहित दिखलाई पड़ते हैं। यह एक ऐसी बुरी आदत है जो एक बार पड़ जाने पर फिर जल्दी पीछा नहीं छोड़ती। इसमें पड़कर अब तक हजारों होनहार नवयुवक नष्ट-भ्रष्ट हो चुके हैं। जो युवक आदर्श समझे जाते थे, जिनसे देश-हित होने की अधिक सम्भावना थी वे इस दुर्व्यसन में पड़ कर किसी काम के भी न रहे।

इसके सम्बन्ध में एक डाक्टर कहता है कि—"जिस प्रकार घुन लगने से लकड़ी खोखली हो जाती है उसी प्रकार इस दुर्व्यसन के कारण मनुष्य की देह जर्जर हो जाती है, उसका स्वास्थ्य सदा के लिये नष्ट हो जाता है। देह में तरह तरह की बीमारियाँ घर बना लेती हैं। सुन्दर, कोमलता पूर्ण मुख बदल कर म्लान, रूखा और बुड्ढों के समान हो जाता है। देह में

सौन्दर्य्य और लावण्य का चिन्ह भी नहीं रहता। आँखों में जल भरा रहता है और उनके चारों ओर काली रेखा पड़ जाती है। उत्साह नष्ट हो जाता है। साहस का नाम भी नहीं रहता। इतना ही नहीं फिर वह यहाँ तक कायर हो जाता है कि उसमें किसी के साथ आँख मिलाकर बातें करने की हिम्मत जाती रहती है"। जब यह बुरी आदत बढ़ने लगती है तो स्वप्न में वीर्य्य-पात होने लगता है। वीर्य्य बिलकुल पतला हो जाता है और वीर्य्य अक्सर अजान पेशाब के साथ बाहर निकल जाता है। कमर, पीठ, सिर आदि तमाम अङ्गों में दर्द होने लगता है। पाचन शक्ति बिगड़ जाती है और पेट में तरह तरह के रोग पैदा हो जाते हैं। खाया हुआ अन्न नहीं पचता। मस्तिष्क कमजोर हो जाता है। स्मरणशक्ति नष्ट हो जाती है जिससे कही या सुनी बात शीघ्र ही भूल जाती है। मन सदा चंचल और उदासीन रहता है। किसी काम में भी तबीयत नहीं लगती। किसी दशा में आराम नहीं मिलता। किसी किसी के सिर में बड़ा दर्द होता है और हाथ पैर तथा मांस जलने लगते हैं, जीवन की प्रफुल्लता नष्ट हो जाती है और मिजाज चिड़चिड़ा हो जाता है।

इस रोग के अधिक बढ़ जाने से मूत्र सम्बन्धी तरह तरह के भयंकर रोग पैदा हो जाते हैं। वीर्य्य की धारणा शक्ति बिलकुल जाती रहती है। और सोते जागते में वह बार बार अपने आप बहता रहता है।

इससे मनुष्य की शक्ति सर्वथा लोप हो जाती है। सिर चक्कर खाने लगता है और आँखों के सामने अँधेरा छाया रहता है। मुँह से बदबू निकलने लगती है और दाँत इतने खराब हो जाते हैं कि मसूड़ों से खून निकलने लगता है। देखने और

सुनने की ताक़त कम हो जाती है। रोगी को अपना जीवन दुखमय मालूम पड़ने लगता है और अनेक समय उसके चित्त में आत्म-हत्या करने की इच्छा उत्पन्न होती रहती है।

हस्तमैथुन का प्रचार अधिकतर पुस्तक-कीट बने हुए विद्यार्थी समुदाय में दिखलाई देता है। माता पिता इस भीतरी कारण को नहीं समझते। वे जानते हैं कि अभ्यास की अधिकता के ही कारण बालकों की ऐसी दुर्दशा हुई है किन्तु दुर्दशा का वास्तविक कारण है हस्तमैथुन। हस्तमैथुन ही के कारण उनका मस्तिष्क कमजोर और आँखों की ज्योति कम हो जाती है। हस्तमैथुन ही के कारण लड़कपन में उन्हें चश्में लगाने की आवश्यकता होती है और हस्तमैथुन ही के कारण वे क्षीणकाय और मन मलीन बिलकुल मुर्दे की तरह दिखलाई पड़ते हैं।

हस्तमैथुन के अतिरिक्त पारस्परिक कुकर्म से भी लड़के वीर्य्य नाश करते हैं। पारस्परिक कुकर्म भी उतना भयावह है जितना हस्तमैथुन। इसमें भी लिप्त बालकों का शारीरिक और मानसिक ह्रास पूर्ण रूप से होता है।

बाल विवाह ने भी ब्रह्मचर्य-रक्षा में भारी धक्का पहुँचाया है। माँ बाप प्रायः १२ वर्ष की आयु तक अपने लड़कों का विवाह कर डालते हैं। गाँवों में तो कहीं कहीं तीन तीन वर्ष के लड़के और लड़कियों का विवाह देखा गया है। १५ वर्ष में उनका गौना कर दिया जाता है और फिर इसी आयु से स्त्री-प्रसंग करके वे अपने वीर्य्य का नाश करना प्रारम्भ करते हैं, इससे लड़कों के अंगों की वृद्धि रुक जाती है और शरीर में कमज़ोरी आने लगती है। वे स्त्री-पाश में इस क़दर फँस जाते हैं कि उनका पढ़ना भी छूट जाता है। उनकी स्वाभाविक

चपलता और प्रसन्नता जाती रहती है, गृहस्थी के नोन-तेल के चक्कर में वे अल्पायु में ही पड़ जाते हैं। ऐसे लोगों की सन्तान भी दुर्बल होती है। बेजोड़ विवाह होने से पति-पत्नी में सच्चा प्रेम नहीं होता और इसीलिए लड़के वेश्याओं के यहाँ जाने लगते हैं। साथ ही स्त्रियाँ भी व्यभिचारिणी हो जाती हैं।

इस प्रकार का जो भारी पतन हमारे नवयुवक समुदाय में हो रहा है उसका दोष उनके अभिभावकों पर है। प्रायः जिस अवस्था में लड़के इस दुर्व्यसन में फँसते हैं उस समय उनको वीर्य-रक्षा के लाभ और वीर्य-क्षय की हानियों का कुछ भी पता नहीं होता। अनुभवहीन बालक कुमार्गगामी साथियों के फेर में पड़कर क्षणिक सुख के हेतु सदा के लिए अपने को दुर्व्यसन के गढ़े में डाल देते हैं। उस समय यदि माता पिता उनके चरित्र पर पूर्णरूप से दृष्टि रक्खें और उनको वीर्य्य संचित करने के लाभ तथा वीर्य्य क्षय करने की हानियों को बराबर समझाते रहें तो वे इस दुर्व्यसन से बहुत कुछ बच सकते हैं।

माता पिता का कर्तव्य केवल यही नहीं होना चाहिये कि वे लड़कों को खिलायें, पिलायें, कपड़े पहिनायें। पढ़ाने के लिये एक मास्टर रख दें और स्कूल भेज दिया करें। वास्तव में उनकी निगाह इस बात पर होनी चाहिये कि लड़के का चरित्र तो नहीं बिगड़ रहा है, उसके अन्दर कोई दुर्गुण तो प्रवेश नहीं कर रहा है, उसकी मानसिक और शारीरिक अवस्था तो ठीक है न! वह अच्छे लड़कों के साथ तो उठता बैठता है। वे प्रायः सारा उत्तरदायित्व स्कूल के अध्यापकों पर ही फेंक देते हैं। वे समझते हैं कि लड़का स्कूल गया अब मास्टर सब ठीक कर

लेंगे। यह उनका भारी भ्रम है। अध्यापकों को स्कूलों में इतना पढ़ाने को रहता है कि वे चरित्र सुधार पर विशेष ध्यान नहीं दे सकते। चरित्र का नाश वास्तव में घर में होता है। सुबह शाम लड़के आवारा लड़कों के साथ टहलने निकल जाते हैं अथवा शौच के बहाने वीर्य्यनाश करते हैं। माता पिता का धर्म है कि इस प्रकार आवारों की संगति से अपने बच्चों को रोकें अथवा शौच के बहाने वीर्य्यनाश करने पर भी कड़ी दृष्टि रक्खें। अध्यापकों पर सारी ज़िम्मेदारी छोड़ देना एक थोथी बात है।

यदि लड़के वास्तव में किसी प्रकार से वीर्य्य का नाश कर रहे हैं तो बिना किसी लज्जा के अभिभावकों को लड़कों से कह देना चाहिये कि तुम वीर्य्यनाश कर रहे हो, सावधान हो जाओ। जिन बातों पर लड़कों के जीवन मरण का प्रश्न निर्भर है उनमें शर्म करना भारी भूल है। शर्मवश देखते हुये भी अनदेखी कर जाना उचित नहीं है। मिसेज़ एलिस नाम की एक अँगरेज़ महिला कहती हैं:—

"वीर्य्य-रक्षा के सम्बन्ध में अनजान रहना भयंकर पाप है। इस नवीन युग में अनजानपन को निर्दोषिता नहीं समझा जा सकता। इस सम्बन्ध में साफ़ साफ़ बतला देने से आज तक किसी बच्चे को हानि नहीं पहुँची। चुप रहने, झूठी लज्जा करने और इस भेद को छिपाने से असंख्य बालकों का नाश हो चुका है।"

साधारणतया लड़के कुसंग में पड़कर वीर्य-नाश करते हैं। नादान भोले भाले ख़ूबसूरत लड़कों को दुष्ट नटखट लड़के बहका ले जाते हैं। उनको नाना प्रकार के प्रलोभन देते हैं।

अपनी कुत्सित इच्छा को पूर्ण करने के लिये मिठाई खिलाते हैं और पैसे भी देते हैं, इस प्रकार अच्छे लड़के खराब हो जाते हैं। अमीरों और सेठों के बालकों को प्रायः उनके नौकर अनुचित लाभ उठाने के अभिप्राय से बुरी बुरी बातें सिखला कर कुमार्गगामी बना देते हैं।

गन्दी गन्दी पुस्तकों के पढ़ने से भी वीर्य-नाश की भावना हृदय में पैदा होती है। संरक्षकों के सामने बारह बारह बजे रात तक गन्दे गन्दे उपन्यास लड़के पढ़ते हैं और वे कुछ बोलते नहीं। इन पुस्तकों के पढ़ने से बालकों के अनुभवहीन मन में समय से बहुत पहिले कामाग्नि पैदा हो जाती है और वे प्रायः उपन्यास में दिये हुए चरित्रों का चरित्र-चित्रण अपने जीवन में ही करने लगते हैं।

अनेक प्रकार की नशाबाजी करने से भी वीर्यनाश होता है। गाँजा, भाँग, चरस, कोकीन, शराब वीर्य के पूरे शत्रु हैं। नवयुवकों में सिगरेट पीने की बुरी प्रथा चल निकली है।

दस दस वर्ष के बालक सिगरेट पीते हुये देखे जाते हैं। सिगरेट पीने से वीर्य दूषित हो जाता है। इसके कारण नसें उत्तेजित होती हैं, और वीर्य-नाश करने की प्रबल इच्छा हृदय में उत्पन्न होती है।

खटाई, लालमिर्च और नाना प्रकार के मसालों के खाने से भी वीर्य पतला होकर आप से आप उबल पड़ता है। फुलकी, कचालू, बड़े आदि स्वादिष्ट पदार्थों का सेवन नवयुवक विशेष रूप से करते हैं. उनमें लालमिर्च विशेष रूप से पड़ी रहती है। रोते जाते और सी सी करते जाते हैं। परि-

णाम यह होता है कि वीर्य पेशाब के मार्ग से गिरने लगता है और बालकों के स्वास्थ्य को बड़ी हानि पहुँचाता है।

वीर्यरक्षा पर मानसिक स्थिति का भी भारी प्रभाव पड़ता है। जो लोग चिन्ता में सदैव रहते हैं; जिन लोगों के स्वभाव क्रोधी और चिड़चिड़े हैं, जिन लोगों की दृष्टि सदैव विषय की ओर लगी रहती है, वे अपने वीर्य की रक्षा नहीं कर सकते।

यहाँ तो हमने अपने देश में ब्रह्मचर्य्य की वर्तमान अवस्था बतलाई और वीर्य्यनाश के मुख्य मुख्य कारण बतलाये। अब हम वीर्य्यरक्षा के उपाय बहुत संक्षेप में बतलावेंगे।

हमारे शास्त्रों में ब्रह्मचारियों के लिये बड़े बड़े कड़े नियम लिखे हुये हैं। आदेश किया गया है कि ब्रह्मचर्य्य रखने वाला स्त्रियों को न देखे, उनसे बातें न करे, उनके विषय में किसी प्रकार की चर्चा न करे, इतना ही नहीं कभी उनकी तस्वीर तक न देखे और न मन में उनकी कल्पना करे। बहुत साधारण भोजन करे और कोपीन दण्ड आदि धारण करे। वास्तव में ये नियम प्रशंसनीय हैं. पर जब हम देश, काल आदि पर विचार करते हैं तो मालूम होता है कि इन नियमों का पालन करना असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। आजकल स्कूल और कालिजों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों से क्या यह आशा की जा सकती है कि वे स्त्री की सूरत तक न देखें। ऐसे फैशन के समय में जब अधिकतर पठित समुदाय बिना टाई, कालर, कोट-बूट डाटे बाहर निकलना पसन्द नहीं करता तो क्या विद्यार्थी कोपीन दण्ड धारण कर सकते हैं। अतएव कुछ ऐसे नियम यहाँ पर

लिखना आवश्यक हैं जिनका पालन सर्वसाधारण सुगमता से कर सकें।

मनुष्य के शरीर का मुख्य आधार भोजन है। जैसा भोजन मनुष्य करता है उसी के अनुसार उसका शरीर सुसंगठित होता है और उसी के अनुसार गुण भी मनुष्य में पैदा होते हैं। शरीर और मन का भोजन के साथ बड़ा सम्बन्ध है। यदि सात्विक और स्वास्थ्यकर भोजन किया जाय तो शरीर और चित्त प्रसन्न रहेंगे और सद्गुणों की वृद्धि होगी। अतएव वीर्य्य-रक्षा के लिए भोजन के शुद्ध होने पर पूर्ण ध्यान रखना आवश्यक है। जो मनुष्य सात्विक और सादा भोजन करते हैं उनका वीर्य्य अपने आप नष्ट नहीं होता और शुद्ध अवस्था में रहता है। सादे भोजन की महिमा का आजकल योरोप व अमरीका के बड़े बड़े डाक्टर स्वीकार कर रहे हैं। उनका मत है कि मनुष्य जितने स्वादिष्ट, गरिष्ट, और बढ़िया खाने खाता है उतना ही उसे नुकसान पहुँचता है। इसीलिये ब्रह्मचर्य्य के इच्छुक का कर्तव्य है कि वह सदा दाल, चावल, मोटे आटे की रोटी आदि हलका भोजन करे। थोड़ा दूध पीवे और थोड़ा घी खावे। मसालों का व्यवहार न करे। फलों का सेवन विशेष रूप से करे। केवल दो समय हलका भोजन करे। जल-पान बिलकुल न करे। प्रातःकाल से सोने तक अपनी दिनचर्य्या ऐसी रक्खे कि कभी खाली बैठने की नौबत न आये।

सत्संगति वीर्य्यरक्षा के लिये आवश्यक है। सत्संगति से मनुष्य को वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति होती है और वह दुर्गुणों से बच सकता है। इसलिये आवश्यक है कि सदा विद्वानों

ज्ञानियों और महात्माओं से वार्तालाप करने, तथा उनसे शिक्षा ग्रहण करने का पूरा पूरा उद्योग किया जाय।

जिस प्रकार सत्संगति में रहना आवश्यक है उसी प्रकार श्रेष्ठ ग्रन्थों का पढ़ना और पढ़ाना आवश्यक है। उनके द्वारा थोड़े ही परिश्रम से अधिक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। जिन ग्रन्थों और शास्त्रों में मनुष्य के कर्तव्य बतलाये गये हैं, संसार में सफलता प्राप्त करने का मार्ग दिखलाया है; जिनमें पवित्र जीवन व्यतीत करने का उपदेश दिया गया है, जो मनुष्य के ज्ञान, विवेक बुद्धि आदि की वृद्धि करते हैं उनको सदा पढ़ते और मनन करते रहना चाहिये।

स्कूल और कालिजों के लड़के प्रायः दो-चार दुराचारी विद्यार्थियों की कुसंगति में पड़ कर खराब हो जाते हैं। इसी के कारण वे हस्तमैथुन करने लगते हैं, और नाना प्रकार के अस्वाभाविक उपायों द्वारा वीर्य्य का नाश करते हैं। ऐसे लड़कों को दुराचारी बालकों का साथ छोड़ देना चाहिये। जो लड़के सदा पवित्रता का ध्यान रखते हैं वे कभी दुर्व्यसनों में नहीं पड़ते। पवित्रता की शक्ति बड़ी अमोघ है। उसके सामने पापाचरण और दुर्व्यसनों को ठहर सकने का साहस नहीं होता।

नित्य प्रति अच्छी तरह व्यायाम करना वीर्य-रक्षा के लिये अत्यन्त हितकारी है। कितने ही लोगों का ख़याल है कि जब शरीर में खूब ताक़त होती है तब मनुष्य का मन विषय भोग की ओर अधिक दौड़ता है। पर यह बात बिल्कुल ग़लत है। ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने वाले को सब प्रकार के नशों का परि-

त्याग करना चाहिये। इनसे शरीर, स्वास्थ्य और दिमाग़ बिगड़ता है। विद्यार्थियों में बीड़ी और सिगरेट पीने की बुरी रिवाज चल गई है। एक पैसे की पाँच सस्ती सिगरेट और १० बीड़ियाँ मिलती हैं। बस, बैठे बैठे वे दिन भर पिया करते हैं। चाय तो फ़ैशन में दाखिल हो गई है। चाय हाज़में को खराब और ख़ून को विषैली करती है। भाँग को भी लोग ख़ूब आनन्द से पीते हैं। बहुत से लोग दोनों समय पीते हैं। ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने वालों को सिगरेट, बीड़ी, चरस, भाँग आदि नशे की चीज़ों को एकदम छोड़ देना चाहिये।

मन का वीर्य्य-रक्षा के साथ बड़ा सम्बन्ध है। यदि मनुष्य इसको अपने वश में रक्खे तो वह सब प्रकार की बुराइयों से बच कर आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत कर सकता है, पर मन है बड़ा नटखट। सदा यह इधर उधर दौड़ता फिरता है। जहाँ इसे ढीला किया कि वह दुर्व्यसनों की ओर जाता है। वीर्य्य की रक्षा करने वाले को मन पर क़ाबू रखना अत्यावश्यक है। उसे सदैव अच्छे अच्छे विचारों की ओर जबरदस्ती से ले जाना चाहिये। कृष्ण भगवान् ने गीता में कहा है :—

> असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
> अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥

अभ्यास और वैराग्य से मन कब्जे में आ सकता है, किन्तु ऐसे करने के लिये धैर्य और अध्यवसाय की बड़ी आवश्यकता है। एक बार यदि मन वश में न लाया जा सके तो घबड़ाना नहीं चाहिये। बार बार उसे लाने का प्रयत्न करना चाहिये। करते करते वह वश में आ जावेगा।

किसी स्त्री की ओर देखकर हृदय में माँ का भाव पैदा करना चाहिये। विषय की ओर तो मन को कभी जाने नहीं देना चाहिये। विषय से रोकने का सब से सरल उपाय यह है कि मनुष्य सदा काम में लगा रहे, कभी खाली न बैठे। खाली बैठने से नाना प्रकार के बुरे विचार मस्तिष्क में उत्पन्न होते हैं।

कामोत्तेजना वास्तव में निर्बलता का चिह्न है, और निर्बल तथा अस्वस्थ मनुष्यों को ही यह अधिक सताती है। इसलिए जो मनुष्य सदा व्यायाम करता है और जिसका शरीर सब तरह से सबल और स्वस्थ रहता है उसका चित्त दुर्व्यसनों की ओर अधिक नहीं जाता, इसके अतिरिक्त व्यायाम करने वाले बलवान मनुष्य को यह भी खयाल रहता है कि यदि मैं वीर्य नष्ट करूँगा तो शरीर में कमजोरी आ जायगी। कितने ही पहलवान इसी डर से वीर्य नष्ट करने से बचे रहते हैं। व्यायाम से मनुष्य के सब अङ्ग अपनी स्वाभाविक अवस्था में रहते हैं और अपना अपना काम पूरी तरह से करते हैं। इस कारण उसके शरीर में किसी प्रकार का रोग जड़ नहीं जमाता और इससे वीर्य दूषित होने से बचा रहता है।

१५—उपवास का महत्व

प्राचीन समय में लोग प्रकृति के नियमों के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करते थे, इसलिये उपवास की कुछ भी आवश्यकता नहीं पड़ती थी। किन्तु आजकल के लोगों के रहन-सहन और खान-पान बिलकुल अप्राकृतिक हो गये हैं। विजातीय द्रव्य की मात्रा और मरे हुए परिमाणु मनुष्य शरीर के भीतर संचित होते जा रहे हैं। अतएव उनको बाहर निकाल कर फेंक देने के लिये उपवास करने की बड़ी आवश्यकता है।

यथेष्ट व्यायाम न करने और प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करने से भोजन भलीभाँति नहीं पचता। भोजन न पचने से शरीर का पोषण नहीं होता और पोषण न होने से मल को बाहर निकालने वाली इन्द्रियाँ शक्तिहीन हो जाती हैं। इन्द्रियों के निर्बल होने से पचा हुआ अन्न और विजातीय द्रव्य पूर्ण रूप से बाहर नहीं निकलते। ऐसा होने से विजातीय द्रव्य का कुछ अंश रक्त में सूख जाता है और कुछ अंतड़ियों में सड़कर नाना प्रकार के रोगों के कीड़ों का पोषक बन जाता है। रक्त में सूखा हुआ विजातीय द्रव्य शरीर के भिन्न भिन्न जोड़ों में संचित हो जाता है और मनुष्य कुरूप, निरुत्साही, और आलसी बन जाता है। विजातीय द्रव्य संचित होने से शरीर के भीतरी कामों में बड़ी रुकावट पड़ती है, और नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होने लगते हैं। ऐसे समय में भूख बन्द हो जाती है, और शरीर के भीतर उपवास करने का एक

इशारा अन्तःकरण की ओर से होता है। यह संकेत पाकर कुत्ते, बिल्लियाँ उस समय तक खाना बन्द कर देते हैं जब तक उन्हें ठीक भूख नहीं लगती। एक मनुष्य ही ऐसा है जो इस इशारे पर ध्यान नहीं देता। वह नित्य समय समय पर बिना भूख के ही स्वभाववश खाता चला जाता है, और विजातीय द्रव्य को और भी अधिक बढ़ाता जाता है। अन्त में उसे असाध्य रोग आ दबोचता है, और फिर उसे विवश होकर इस संसार को छोड़ना पड़ता है।

शरीर के भीतर संचित विजातीय द्रव्य को निकालने का 'उपवास' एक प्राकृतिक उपाय है। हमारी भीतर की इन्द्रियाँ एक ही समय में शरीर का पोषण और विजातीय द्रव्य का निष्काशन, ये दो काम नहीं कर सकतीं। विजातीय द्रव्य पोषण में बाधा डालता है। शरीर को पोषण न मिलने के कारण विजातीय द्रव्य क्रमशः बढ़ता जाता है और अन्त में फिर हमारे शरीर का दिवाला निकलने लगता है। अतएव जीवन को स्थिर रखने के लिये इन्द्रियों को विश्राम देना, अर्थात् उपवास करना अत्यन्त आवश्यक है।

बहुत से लोग समझते हैं कि बिना अन्न खाये शरीर का पोषण किस प्रकार हो सकता है। परन्तु यह उनकी भूल है। आजकल के वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि शक्ति और प्राण केवल अन्न ही पर निर्भर नहीं हैं बल्कि अन्न की अपेक्षा अधिकांश में निद्रा और वायु सेवन पर अवलम्बित हैं। अन्न न खाने से मनुष्य कुछ दिन तक जीवित रह सकता है, किन्तु न सोने और वायु के अभाव से वह शीघ्र ही मर जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि अन्न की अपेक्षा हवा और नींद अधिक आवश्यक है।

अमेरिका के डाक्टर डयुई की देख-रेख में लीओनार्ड थेस और मिस एस्टेला ने ५६ और ४२ दिनों तक उपवास किया। अन्न न खाने से उनको शक्ति कुछ भी कम न हुई। इसी प्रकार अमेरिका के प्युरिस्टन साहब ने कुछ लोगों को ३० से ४० दिन का उपवास करवाया, किन्तु उनकी शक्ति क्षीण न हुई, उलटे वे उपवास के बाद सशक्त हुए। उपवास से शक्ति स्थिर रहती है, केवल विजातीय द्रव्य बाहर निकलता है। विजातीय द्रव्य बाहर निकलने से भोजन ठीक पचता है और शक्ति बढ़ती है।

विजातीय द्रव्य को बाहर निकालने के लिये औषधि का खाना अत्यन्त हानिकर है। वास्तव में, यदि विजातीय द्रव्य को बाहर निकालना हो तो उपवास कीजिये। उस समय तक बिल्कुल न खाइये जब तक सच्ची भूख न लगे। उपवास राम-बाण औषधि है। "लंघनम् परमौषधम्"—उपवास करना परम औषधि है।

साधारण तन्दुरुस्त लोगों को सप्ताह में एक बार और नहीं तो १५ दिन में एक बार लंघन अवश्य करना चाहिये। शास्त्रकारों ने इसी कारण एकादशी के दिन निराहार उपवास करने का आदेश किया है। किन्तु इस दिन आफ़िस में काम करनेवाले बाबुओं और स्कूल और कालेजों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों को सुविधा नहीं हो सकती; अतः कोई अवकाश का दिन उपवास के लिये रखना चाहिये। उस दिन कुछ भी अन्न न खाना चाहिये। पानी धीरे धीरे ख़ूब पीना चाहिये। उस दिन चित्त को ख़ूब प्रसन्न रखना चाहिये। दूसरे दिन प्रातः एक सन्तरा या नीबू खाकर उपवास तोड़ना चाहिये और उस दिन नित्य की अपेक्षा कम भोजन करना चाहिये।

संसार में प्रायः जितने मुख्य मुख्य मत अथवा सम्प्रदाय हैं उन सब में किसी न किसी प्रकार उपवास या व्रत करने का विधान है। पहले हम हिन्दू धर्म को लेते हैं। आज रविवार का उपवास है तो कल एकादशी का। आज रामनवमी है तो कल कृष्ण-जन्माष्टमी। इस प्रकार छोटे बड़े उपवासों की संख्या सौ से भी ऊपर है। इन सब व्रतों का एक ही सिद्धांत है, और वह है पाचन-क्रिया को ठीक अवस्था में रखना। जैनियों के धर्म-ग्रन्थों में लम्बे लम्बे उपवासों का विधान है। उनके उपवास महीनों चलते हैं और बहुत अंशों में उन उपवासों से मिलते जुलते हैं जो पाश्चात्य देशों के चिकित्सक अपने रोगियों से करवाते हैं।

मुसलमान लोग प्रति वर्ष पूरे एक महीने तक उपवास करते हैं जिसे वे रोजा कहते हैं। वे प्रातःकाल ४ बजे खा लेते हैं दिन भर कुछ नहीं खाते। सूर्यास्त के बाद पानी पीते और भोजन करते हैं। ईसाइयों के धर्मग्रन्थों में भी उपवास की आज्ञा है। कहने का तात्पर्य यह कि सभी धर्मों में शरीर और मन को स्वस्थ रखने के लिये उपवास की आयोजना की गयी है।

वास्तव में व्रत निराहार होना चाहिये। निराहार न हो सके तो थोड़ा सा फल खा लेने से भी लाभ होता है। किन्तु हम देखते हैं कि उपवास के दिन लोग सिंघाड़े की पूड़ियाँ, कुट्टू की पकौड़ियाँ, खोवे के लड्डू, रबड़ी और मलाई खाया करते हैं। नित्य की अपेक्षा उस दिन दुगुना गरिष्ट भोजन होता है। इस प्रकार के भोजन से व्रत न रहकर रोटी, दाल, भात और तरकारी खाना कहीं अच्छा है।

शरीर के भीतर यदि मल अधिक भरा हुआ हो तो एक

दिन के उपवास से काम नहीं चलता, इतने मल को निकालने के लिये कम से कम एक सप्ताह के उपवास की आवश्यकता है। धीरे धीरे अभ्यास करने से एक सप्ताह का उपवास सरलता से किया जा सकता है। उपवास के दिनों में धीरे धीरे ख़ूब पानी पीना, खुली हवा में रहना और एनिमा लेना आवश्यक है। ऐसा करने से अँतड़ियों का सञ्चित पुराना मल आसानी से निकल जायगा।

उपवास के दिनों में स्नान बराबर करना चाहिये और अच्छी अच्छी पुस्तकें पढ़नी चाहिये किन्तु अधिक मानसिक परिश्रम न करना चाहिये। प्रातःकाल आध सेर गरम पानी पीना और भी अधिक अच्छा है। इससे अँतड़ियों की सफ़ाई और भी अधिक हो जायगी। उपवास प्रारम्भ करने के तीन दिन तक भूख लगेगी लेकिन फिर भूख मालूम तक न पड़ेगी। जीभ का सफेद होना विजातीय द्रव्य का सूचक है। अतः जीभ का रंग स्वाभाविक हो जाने तक लंघन जारी रखना चाहिये। जब तक जीभ सफेद रहेगी उस समय तक यह समझना चाहिये कि विजातीय द्रव्य अभी शरीर में वर्तमान है। जीभ का स्वाभाविक रंग ८-१० दिन में लौट आता है, किन्तु कभी कभी १५ या २० दिन लगते हैं। उपवास करते समय शरीर का कृश होना स्वाभाविक है, किन्तु उपवास तोड़ने के कुछ दिन बाद यह कृशता दूर हो जाती है।

उपवास तोड़ते समय बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। जिस दिन उपवास तोड़ना हो उस दिन नींबू या नारंगी का रस पान करना चाहिये। आगे भी दो-तीन दिन के बाद नींबू अथवा ४ नारंगियों का रस पीते रहना चाहिये। इसके अनन्तर प्रति दिन ३ से ४ सेर तक दूध थोड़ा थोड़ा करके

पीना चाहिये। तत्पश्चात् दाल, भात, तरकारी खाना चाहिये, और ८-९ दिन पश्चात् पूर्ववत् भोजन करना चाहिये। पकवान या दूसरी स्वादिष्ट वस्तु खाकर उपवास कभी नहीं तोड़ना चाहिये। ऐसा करने से बड़ी हानि होने की सम्भावना रहती है। पहिले ३ दिन का लंघन करना चाहिये। दो तीन महीने के बाद फिर एक सप्ताह का उपवास करना चाहिये। इस प्रकार जितने दिनों के लङ्घन की आवश्यकता हो उतने दिन तक लङ्घन बढ़ा लेना चाहिये।

क्षय के रोगी को लम्बा उपवास नहीं करना चाहिये। उपवास करने से उसकी जीवन शक्ति नष्ट हो जाती है। केवल भोजन घटा देना चाहिये। २४ घंटे में केवल एक बार हलका भोजन उसके लिये पर्याप्त है। छोटे छोटे उपवास उसके लिये लाभकारी हैं। गर्भवती स्त्री को भी उपवास नहीं करना चाहिये। मनोविनोद या दिखलाने के लिये उपवास करना ठीक नहीं। शोच या चिन्ता के समय भी उपवास करना हानिकारक होता है। जो लोग स्वस्थ्य हैं उन्हें १५ दिन में केवल एक दिन के लिये उपवास करने की आवश्यकता है।

उपवास काल में किसी प्रकार की औषधि आदि का कदापि सेवन न करना चाहिये। उपवास प्राकृतिक चिकित्सा है। प्राकृतिक चिकित्सा में अप्राकृतिक चिकित्सा का प्रवेश करना भारी भूल है। बहुत से लोग ऐसे देखे गये हैं जिन्होंने उपवास काल में या उसके पश्चात् ही चिकित्सा कराई और उनकी मृत्यु हो गई।

अमेरिका और इङ्गलैंड आदि देशों की लङ्घन कराने वाली मण्डलियों का ऐसा अनुभव है कि लङ्घन करते समय नित्य के

काम को करते रहना चाहिये। लङ्घन करने से काम करने को शक्ति कुछ भी कम नहीं होती बल्कि मानसिक शक्ति पहिले की अपेक्षा अधिक प्रबल हो जाती है। इस बात को भली भाँति स्मरण रखना चाहिये कि उपवास के दिनों में, स्नान, व्यायाम, एनिमा, पानी का पीना बराबर जारी रखना चाहिये, ऐसा न करने से उपवास से फिर विशेष लाभ नहीं होता। एक सप्ताह से यदि अधिक दिन का उपवास करना हो तो किसी योग्य डाक्टर के निरीक्षण में उपवास करना चाहिये।

उपवास करने और उपवास तोड़ने के नियमों से अनभिज्ञ होने के कारण उपवास करने वालों को जितना लाभ होना चाहिये उतना नहीं होता। उनको पहले उपवास पर कुछ पुस्तकें पढ़ लेनी चाहिये और जिन लोगों ने उपवास किया है उनसे इस विषय की जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिये। ऐसा करने से वे उपवास से पूरा पूरा लाभ उठा सकेंगे।

१६—जल-चिकित्सा

प्रकृति के साथ रहने वाले प्राणियों को किसी प्रकार की औषधि सेवन करने की आवश्यकता नहीं होती। जो लोग यथेष्ठ स्वच्छ वायु का सेवन करते हैं, जो स्वच्छ जल पीते हैं और सात्विक अल्पाहार करते हैं, जो नियमित व्यायाम और ब्रह्मचर्य का ध्यान रखते हैं, वे पहिले तो बीमार पड़ते ही नहीं, और यदि पड़ते भी हैं तो कई वर्षों के बाद, और वह भी बहुत ही कम दिनों के लिये। ऐसे बीमार मनुष्यों को जल-चिकित्सा द्वारा अपने को आराम करना चाहिये। कठिन से कठिन रोग से पीड़ित मनुष्य भी यदि जल-चिकित्सा को व्यवहार में लावे, तो उसे भी लाभ अवश्य हो सकता है।

इस समय औषधि करने के जितने तरीके प्रचलित हैं उन सब में जल-चिकित्सा सब से उत्तम और सब से सुगम है। डाक्टरी दवाओं में बहुत खर्च पड़ता है; छोटे से छोटे नुसखे में दो एक रुपये खर्च हो जाते हैं। लाभ भी अधिक नहीं होता। होमियोपैथिक, हकीमी और वैद्यक का भी यही हाल है। इन औषधियों में भी कुछ न कुछ खर्च पड़ता ही है, किन्तु फल सन्देह-जनक ही रहता है। जल-चिकित्सा ही एक ऐसी चिकित्सा है जिसमें खर्च बहुत ही कम है और लाभ निश्चय है। प्रारम्भ में थोड़े से सामान खरीदने में जो कुछ खर्च पड़ता है वही खर्च होता है फिर कुछ नहीं। और वह सामान आगे चलकर दूसरों को भी अच्छा कर सकता है। दूसरी चिकित्साओं से तो वही रोग अच्छा होता है जिसके लिये के

चिकित्सायें की जाती हैं; किन्तु जल-चिकित्सा ही एक ऐसी चिकित्सा है, जोकि की तो जाती है एक रोग के लिये, किन्तु साथ साथ शरीर के और सब रोग भी अच्छे हो जाते हैं।

जल-चिकित्सा के जन्मदाता जर्मनी के डाक्टर लुई कुह्नी साहब हैं। उनकी रुचि इस चिकित्सा की ओर किस प्रकार पैदा हुई और उसके प्रचार के लिये उन्होंने किस प्रकार कार्य आरम्भ किया; इसे जैसे लुई कुह्नी साहब ने अपनी पुस्तक "न्यू साइन्स आफ फीलिङ्ग" में लिखा है हम उनके मुख से संक्षेप में वर्णन कराते हैं:—

"जब मैं बीस वर्ष का था तो मेरे सिर और फेफड़े में पीड़ा होने लगी। मैंने डाक्टरों की दवा की किन्तु कोई लाभ न हुआ। मेरी वृद्धमाता बहुत दिन से रोगी थी, मुझसे कहा करती थी कि डाक्टरों से होशियार रहना; मेरे शरीर में जो रोग मौजूद हैं, वे डाक्टरों की दवा करने से उत्पन्न हुये हैं। मेरे पिता भी डाक्टरों की दवा करते करते मर गये थे। अतएव डाक्टरों की औषधियों पर मेरा बिल्कुल विश्वास न था। मेरी बीमारी बढ़ती गई। सन् १८६४ ई० में मैंने स्वाभाविक जल-चिकित्सा का नाम सुना। इसकी एक सुसाइटी खुली हुई थी। मैं उसी में जाकर इस विषय पर लोगों के व्याख्यान सुनने लगा। मैंने चिकित्सा की आज़माइश अपने रोग पर की और मुझे आराम हुआ। उस समय से जल-चिकित्सा की ओर मेरा विश्वास बढ़ने लगा।

"मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं हुआ। रोग क्रमशः बढ़ता गया और मेरी दशा शोचनीय हो गई। मेरे मेदे में एक फोड़ा निकल आया और मेरा फेफड़ा खराब हो गया। मेरे सिर का दर्द भी बढ़ गया। मैंने स्वाभाविक चिकित्सा फिर की, और मुझे लाभ हुआ किन्तु रोग नहीं गया। मैं बाहर जंगलों में, खुली हवा में, घूमा करता था। और स्वाभाविक चिकित्सा के तथ्यों पर विचार करता था। रोगों के कारण मेरी समझ में आने लगे और कुछ दिनों में मैंने कुछ सिद्धान्त स्थिर किये और कुछ सीधे साधे यंत्र भी तैयार किये। थोड़े समय में मैं बिल्कुल चंगा होगया। अब मुझे पूरा विश्वास हो गया कि मेरी चिकित्सा सच्ची है, और मैं अपने विचारों को सर्व साधारण में प्रगट करने लगा। डाक्टरों से भी बातचीत की; किन्तु वे मेरी हँसी उड़ाने लगे और मुझे पागल कहने लगे।

"मैं निराश नहीं हुआ और अपनी धुन में लगा रहा। मैंने मन में ठान लिया कि इस चिकित्सा से जब तक मैं १००, ५० रोगियों को अच्छा न कर लूँगा, तब तक लोग विश्वास न करेंगे। नाना प्रकार के रोगों से मनुष्यों को पीड़ित देख मेरा हृदय दुखी रहने लगा। मेरा अंतःकरण मुझे बार बार प्रेरित कर रहा था कि जल-चिकित्सा का प्रचार करके लोगों का दुख दूर करो। परिणाम यह हुआ कि १० अक्टूबर सन् १८८३ ई० को मैंने जल-चिकित्सा का कारखाना खोल दिया। पहिले लोग कम संख्या में आते थे, किन्तु ज्यों ज्यों बीमारों को लाभ होने लगा, त्यों त्यों लोगों की संख्या बढ़ने लगी। इसी बीच में मैंने (साइन्स आफ फ़िज़ीकल एक्सप्रेशन) अर्थात् 'मुखचर्य्या विज्ञान' नाम की पुस्तक तैयार की और उसमें कुछ ऐसे सिद्धान्त स्थिर किये जिनके द्वारा मैं मनुष्यों का मुख देखकर उनके भावी

रोगों को बताने लगा। मेरा नाम देश देशान्तरों में भी फैल गया। और अब दूर दूर के लोग चिकित्सा कराने के लिये मेरे पास आने लगे।

"मैं तो अब बिल्कुल चंगा हो ही गया था, किन्तु मैंने ऐसे ऐसे रोगियों को भी अच्छा किया जो परलोक को जाने की तैयारी कर चुके थे। यह सफलता मुझे एक नवीन प्रकार के स्नान से प्राप्त हुई जिसका नाम मैंने मेहन (जननेन्द्रिय) स्नान रक्खा। मैं शपथ पूर्वक कहता हूँ कि इसके द्वारा सब प्रकार के रोग जड़ से नाश हो जाते हैं। चिकित्सा की यह नवीन रीति, जो मैंने निकाली है, परीक्षाओं के अनन्तर मनन करके निकाली है। लोग चाहे मुझे पागल कहें, चाहे मेरी निन्दा करें, चाहे मुझ पर पत्थर फेंकें मैं सब सहन करने को तैयार हूँ। मनुष्य जाति के कल्याण करने वाले जितने महात्मा हुये हैं उनको लोगों ने आरम्भ में बुरा कहा है और उनकी निन्दा भी की है।

"डाक्टरी इलाज में इतनी अधिक दवाइयाँ दी जाती हैं कि बीमार का शरीर नाना प्रकार के विकारों से भर जाता है। उससे रोग दब जाता है; किन्तु जड़ से नहीं जाता। मौक़ा पाकर फिर उभड़ उठता है। मेरी समझ में यह चिकित्सा नीरोग करने की अपेक्षा मनुष्य को रोगी अधिक कर देती है। "होमियोपैथी" दवाइयों से भी हानि होती है, किन्तु डाक्टरी दवाइयों से कम। इन चिकित्साओं में हानियाँ देखकर ही रौसी आदि सज्जनों ने स्वाभाविक चिकित्सा की नींव डाली। इसमें जो कमी थी उसको मैंने पूरा कर दिया है। स्नान के आडम्बरों को भी कम कर दिया है और रोगों के कारण भी खोज करके निकाले हैं।"

कुहनी साहब के विचार में स्वस्थ मनुष्य वह है जो देखने में सुन्दर हो और जिसके अंग प्रत्यंग सब अपना काम करते हों। प्रायः लोग समझते हैं कि जो जितना मोटा है वह उतना ही तन्दुरुस्त है। पर यह उनकी भारी भूल है। मोटापन एक प्रकार का विकार है जो स्थान स्थान पर स्वास्थ्य के नियमों पर ध्यान न देने से एकत्रित हो जाता है। वह एक ऐसी वस्तु है जिसकी आवश्यकता शरीर को नहीं है। इसका होना ही रोग का कारण है। यही सब रोगों का कारण है। जिस मनुष्य का जीवन प्रकृति से जितना दूर होगा, उसमें उस विकार की मात्रा उतनी अधिक होगी। इस विकार का नाम विजातीय द्रव्य है। अंगरेज़ी में इसे "फ़ारेन मैटर" (Foreign matter) कहते हैं। विजातीय द्रव्य को ही लुई कुहनी ने सब रोगों का कारण बतलाया है।

विजातीय द्रव्य का प्रवेश शरीर में दो भागों से होता है—एक तो नाक से और दूसरे मुँह से। नाक से मुँह अधिक विश्वासघात करता है। अच्छे अच्छे स्वादिष्ट गरिष्ट भोजन के पदार्थ हम पेट में भरते चले जाते हैं। मांस, मदिरा, भाँग, अफ़ीम तक हम से नहीं बचती। आमाशय को अधिक काम करना पड़ता है। कुछ वर्षों के बाद उसकी शक्ति न्यून हो जाती है और वह अपना काम ठीक ठीक नहीं कर सकता। भोजन न पचने से विकार बढ़ता है और वही विकार विजातीय द्रव्य के रूप में प्रकट होकर रोग पैदा करता है। कई वर्षों तक वह जमा होता जाता है और मनुष्य उसकी परवाह नहीं करता। अन्त में वह विवश हो कर चारपाई पर पड़ता है और डाक्टरों, वैद्यों और हकीमों से दवा करता है। उनकी दवाओं से रोग कुछ दब जाता है; किन्तु निर्मूल नहीं होता।

विजातीय द्रव्य निकालने में हमारा शरीर बहुत सहायता करता है। फेफड़ों से दूषित वायु बारबर निकलती है, चर्म-छिद्रों से पसीना निकलता है। आँख, कान और नाक से भी मल बराबर निकलता रहता है। किन्तु अप्राकृतिक जीवन से बहुत सा द्रव्य भीतर ही रह जाता है। वह पहिले मेदे और अँतड़ियों में संचित होता है। वहाँ से फिर वह ऊपर की ओर जाता है और जहाँ उसे स्थान मिलता है वहीं जम जाता है। परिणाम यह होता है कि रक्त का अभिसरण ठीक ठीक नहीं होता और शरीर के भीतरी स्वाभाविक काम भी ठीक ठीक नहीं होने पाते।

विजातीय द्रव्य के परिमाणु सहज में घुल सकते हैं और उनमें उबाल पैदा हो जाता है। उबाल जितना अधिक होगा उतनी ही अधिक उष्णता शरीर में उत्पन्न होगी। जब विजातीय द्रव्य बढ़ जाता है, उनके परिमाणु उबलने लगते हैं और शरीर में उष्णता उत्पन्न होती है, इसी का नाम ज्वर है। जिस प्रकार उष्णता से बर्फ पानी हो जाता है और अधिक सर्दी से वही पानी फिर बर्फ बन जाता है; उसी प्रकार गर्मी और सर्दी से विजातीय पदार्थों का भी रूपान्तर होता है। इन पदार्थों को पानी बनाकर शरीर के भीतर से उड़ा सकते हैं। और शरीर को नीरोग बना सकते हैं। जिस क्रिया से हम ऐसा करते हैं उसी का नाम जल-चिकित्सा है।

कहने का तात्पर्य यह कि शरीर के भीतर विजातीय द्रव्य के संचय से ही नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। या दूसरे शब्दों में यों कहिये कि सब प्रकार के रोगों की जड़ विजातीय द्रव्य ही है। यदि यह द्रव्य शरीर के भीतर से निकाल दिया

जाय तो शरीर स्वस्थ हो सकता है। कूने साहब ने उसे दूर करने के लिये कई प्रकार के स्नान बताये हैं; उनमें मुख्य तीन हैं।

(१) वाष्प स्नान, (२) उदर स्नान और (३) मेहन या जननेन्द्रिय स्नान।

वाष्प स्नान के लिये बेंत की बिनी हुई एक बेञ्च चाहिये। बेञ्च न मिले तो चारपाई से भी काम चल सकता है। उस पर रोगी को लिटा दीजिये और ऊपर से चारपाई सहित मोटे कपड़े (कम्बल रजाई आदि) से ढक दीजिये। ऐसा ढकिये कि उसके भीतर हवा न जाने पावे। बीमार का मुँह भी ढका रहना चाहिये। पानी के खौलते हुये दो बर्तन लाकर एक पैर के नीचे और दूसरा पीठ के नीचे रखिये। एक तीसरे बर्तन को चूल्हे पर चढ़ा रहने दीजिये। दोनों बर्तनों में से जब किसी से भाप निकलना कम हो जाय तो उसे चूल्हे पर चढ़ा दीजिये और तीसरे बर्तन को उसके स्थान पर रख दीजिये। बदलने का क्रम इस प्रकार जारी रखिये। १०, १५ मिनटों में रोगी पसीने से तर हो जायगा। उस पसीने को बराबर पोंछते जाइये। जिन भागों में विजातीय द्रव्य अधिक हो उनमें भाप अधिक पहुँचाते रहना चाहिये। रोगी को फिर पेट के बल लेट जाना चाहिये, ताकि वहाँ भी भाफ लग जाय।

वाष्प स्नान उन्हीं को करना चाहिये जिनके शरीर में विजातीय द्रव्य अधिक हो। कमजोर मनुष्यों को न करना चाहिये। जिन मनुष्यों को चलने-फिरने या परिश्रम करने से पसीना आ जाता है, उन्हें वाष्प-स्नान की इतनी जरूरत नहीं है। ८ दिन में दो बार से अधिक वाष्प स्नान नहीं करना

चाहिये। ज्वर चढ़े हुये मनुष्य के लिये वाष्प स्नान अधिक गुणकारी है। वाष्प स्नान के पश्चात् ठंढे तौलिये से सारे शरीर को पोंछ डालना चाहिये और फिर उदर स्नान करना चाहिये। उदर स्नान करना कभी न भूलना चाहिये। उदर स्नान के पश्चात् सशक्त मनुष्यों को टहलना चाहिये और कमजोरों को ओढ़ कर घर ही में शरीर में गरमाहट लाना चाहिये।

उदर स्नान करने के लिये एक टब की आवश्यकता है। उसमें इतना पानी भरना चाहिये जिससे नाभि के नीचे का भाग और जाघें डूबी रहें। नाभि के ऊपर का भाग और पैर पानी के बाहर रहना चाहिये। स्वाभाविक रीति से जितना ठंढा पानी मिल सके उतना ही ठंढा पानी काम में लाना चाहिये। ठंढे पानी से भरे हुये टब में उपरोक्त ढंग से बैठकर एक मोटे तौलिये या अँगौछे से नाभि के नीचे प्रदेश को ऊपर से नीचे और एक ओर से दूसरी ओर रगड़ना चाहिये। नीचे से ऊपर नहीं रगड़ना चाहिये। पहिले ५ मिनट से १० मिनट तक उदर स्नान करना चाहिये और फिर आवश्यकतानुसार आध घन्टे तक बढ़ा देना चाहिये। पैर और शरीर का ऊपरी भाग नहीं भिगोना चाहिये। उदर स्नान के बाद टहलना या व्यायाम करना चाहिये। कमजोरों को घर में ही ओढ़ कर गरमी लानी चाहिये। मामूली तौर पर दिन में उदर स्नान एक बार करना चाहिये। और खास खास मौकों पर दो बार। विकृत पदार्थ सब पेट में इकट्ठा होकर इस स्थान से रोम-कूपों द्वारा बाहर निकल जाते हैं।

मेहन (जननेन्द्रिय) स्नान दोनों से अधिक महत्वपूर्ण है। इसमें भी एक टब और एक चौकी की आवश्यकता है। चौकी

टब के बीच में रख दी जाती है और ठण्ढा पानी टब में भर दिया जाता है । पानी इतना भरना चाहिये कि चौकी का ऊपरी भाग सूखा रहे । नहाने वाला नंगा होकर इसी चौकी पर बैठ जाता है और वह अपने जननेन्द्रिय को चौकी से नीचे इस प्रकार लटकने देता है जिससें उसका चमड़ा पानी को छूता रहे । फिर बायें हाथ के अँगूठे और एक अँगुली से, जिस से सुविधा हो, जननेन्द्रिय के चमड़े को जहाँ तक खिंच सके, आगे की ओर पानी के भीतर खींचना चाहिये, और दाहिने हाथ से एक गाढ़े के टुकड़े से, बार बार पानी में भिगो कर जननेन्द्रिय के अग्रभाग को धोना चाहिये, यह स्नान १० मिनट से एक घण्टे तक किया जा सकता है । स्त्रियों को भी यह स्नान गुणकारी है । उन्हें केवल जननेन्द्रिय भाग को ठंढे पानी से धोना चाहिये । विशेष बातों की जानकारी के लिये लुई कुने साहब की पुस्तक उन्हें पढ़नी चाहिये ।

जननेन्द्रिय का अग्रभाग शरीर के तन्तुओं का केन्द्र है । अतएव शरीर में यही एक ऐसी इन्द्री है जिसके शीतल करने से सारे शरीर में शीतलता पहुँचती है । इस स्नान को जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है । दो ही चार रोज के पश्चात् इसका लाभ मालूम होने लगता है । इससे शरीर के सब स्नायु सबल हो जाते हैं और काम करने में मनुष्य का उत्साह बढ़ता है । जो रोगी नहीं हैं वे भी यदि इस स्नान को करें तो उनको भी स्वस्थ रहने में बड़ी सहायता मिलेगी ।

जल-चिकित्सा करने के समय भोजन का विशेष ध्यान रखना चाहिये । भोजन की विस्तृत व्याख्या हम भोजन के प्रकरण में कर चुके हैं यहाँ केवल संक्षेप में कहेंगे ।

(१) भोजन जहाँ तक हो प्राकृतिक हो, फलों का व्यवहार ज्यादा किया जाय।

(२) भोजन जितना शीघ्र पाचक रोगी को दिया जावे उतना ही लाभकारी होगा।

(३) भोजन अत्यन्त साधारण रीति से बनाना चाहिये।

(४) अति बलहीन रोगियों के लिये मोटे, बिना छने हुये गेहूँ की लपसी, दाल का पानी या गेहूँ का दलिया देना चाहिये।

(५) शाक अधिक खाना चाहिये। वह भी सादी तौर से बनाया हुआ हो।

(६) मसालों में ज़ीरा और सौंफ खा सकते हैं।

स्मरण रहे, भोजन पर ध्यान न देने से जल-चिकित्सा करने से अधिक लाभ नहीं हो सकता। कहावत है—"असंयमी मनुष्य अपनी क़ब्र अपने हाथ खोदता है।" कुपथ्य के साथ कोई चिकित्सा लाभ नहीं पहुँचा सकती।

(१) स्वास्थ्य और जल-चिकित्सा नाम की पुस्तक छात्रहितकारी पुस्तकमाला से प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक से जल-चिकित्सा के सम्बंध में विशेष बातें मालूम होंगी।

———

१७–प्राणायाम

दोनों फुफ्फुस और हृदय शरीर के अत्यन्त कोमल अंग हैं। फुफ्फुस शुद्ध हवा से हृदय की गन्दगी को साफ़ करते हैं और उसे कारबोनिक एसिड गैस के रूप में निरन्तर बाहर फेंकते रहते हैं। जिनके फुफ्फुस बलिष्ठ हैं उनका स्वास्थ्य अच्छा रहता है। फुफ्फुस खुली हवा में व्यायाम करने और टहलने से बलिष्ठ होते हैं, किन्तु उन्हें बलिष्ठ करने के लिये हमारे शास्त्रकारों ने एक विशेष क्रिया बतलाई है जिसका नाम उन्होंने प्राणायाम रक्खा है। अतएव कुछ चर्चा संक्षेप में प्राणायाम के विषय में इस पुस्तक में करना अत्यन्त उपयुक्त मालूम होता है।

गम्भीर श्वाँस लेने और उसे रोककर फिर निकालने का नाम प्राणायाम है। प्राणायाम योग की पहिली सीढ़ी है। केवल १० मिनट करने से चित्त अत्यन्त प्रसन्न हो जाता है। इसके करने से चित्त की चंचलता दूर होती है और उसमें एकाग्रता आती है। नियमित रूप से अभ्यास करते रहने पर पेशियाँ बलिष्ठ होती हैं, छाती चौड़ी होती है और आयु बढ़ती है।

प्राणायाम के समय गम्भीर निश्वास और प्रश्वास काल में साधारण श्वसन से पँचगुनी वायु ली जाती है। यह अधिक वायु फुफ्फुसों में जाकर दूरवर्ती कोषों (air cells) को भी फैलाकर क्रियाशील बना देती हैं।

प्राणायाम के समय प्राणप्रद (oxygen) वायु अधिक परिमाण में रक्त से मिल जाती है। अतएव चित्त में अधिक प्रसन्नता होती और शरीर में नये बल का संचार होता है।

शरीर के भीतर रोगों के कीड़े अलग अलग मार्गों से प्रविष्ट होते हैं। हमारी देह की जीवनी शक्ति (vital power) उनको नाश करती है, प्राणायाम से यह जीवनी शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। उससे मांस और पेशियों की वृद्धि में भी निरन्तर लाभ पहुँचता रहता है।

अब हम हिन्दू शास्त्रों के कुछ वचन नीचे उद्धृत करते हैं:—

प्राणी वायुरितिख्यात आयामस्तन्निरोधनं।
प्राणायाम् इतिख्याता योगिनां योगसाधनं—तंत्रसार।

प्राण वायु का नाम है व आयाम उसका निरोध है—इसी को प्राणायाम कहते हैं। यह योगियों के योग का साधन है।

प्राणायामंबिना यद्धत साधनं निष्फलं भवेत्।
प्राणायामं बिना मंत्रं पूजने नहिं योग्यना॥—गौतमीये।

बिना प्राणायाम भजन पूजन सभी निष्फल होते हैं। बिना प्राणायाम किये कोई भजन व पूजन का अधिकारी नहीं हो सकता है।

मानसं वाचिकं पापं कायिकश्चापि यत्कृतम्।
तत्सर्वे निर्दहेच्छीघ्रं प्राणायाम त्रयेणेतु॥—कुलार्णवे।

मन, वाणी और कर्म द्वारा कृत समस्त पाप तीन प्राणायामों के करने से शीघ्र नाश हो जाते हैं।

तपस्या तीर्थयात्राद्य यमदानव्रतादयः।
प्राणायाम तस्यैव कलां नार्हति षोड्षी॥—गौतमीये।

तपस्या, तीर्थयात्रा, यम, दान, व्रत आदि का फल प्राणायाम के षोड़शांश $\frac{1}{16}$ के भी बराबर नहीं होता।

प्राणायात् परं तत्वं प्राणायामात् परं तपः।
प्राणायामात् परं ज्ञानं प्राणायामात् परं पदम्॥

—गौतमीये।

प्राणायाम से परमतत्व, परम तप, परम ज्ञान व परम पद प्राप्त होता है।

योगाङ्गनुष्ठानाद शुद्धिक्षये ज्ञात। दीप्तिराविवेकबयातेः॥

—योग० साधन पादे सू० ८२

जब मनुष्य प्राणायाम करता है तब प्रतिक्षण, उत्तरोत्तर काल में अशुद्धि का नाश और ज्ञान का प्रकाश होता जाता है। जब तक मुक्ति न हो तब तक उसके आत्मा का ज्ञान बराबर बढ़ता जाता है।

दह्यन्ते ध्यायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषः प्राणस्य निग्रहात्॥

—मनु० अ० ६। ७१॥

जैसे अग्नि में तपाने से सुवर्णादि धातुओं का मल नष्ट होकर शुद्ध होते हैं वैसे ही प्राणायाम करने से मन आदि इन्द्रियों के दोष क्षीण होकर निर्मल हो जाते हैं।

प्राणायाम की विधि

विशुद्ध खुली हवा में बैठकर प्राणायाम करना चाहिये। नाक से, धीरे धीरे, जहाँ तक फुप्फुस धारण कर सकें, बैठकर वायु को खींचना चाहिये। जब फुप्फुस वायु पूर्ण हो जायँ तो थोड़ी देर तक वायु को रोके रहे और फिर धीरे धीरे प्रश्वास वायु को त्यागे।

शास्त्र का प्रमाण

नासाभ्यां वायुमाकृष्य वायुं वक्त्रेण धारयेत्।
हृद्गलभ्यां समाकृष्य मुख मध्ये विधारयेत्॥

नाक के दोनों रन्ध्रों द्वारा बाहर की वायु को और हृदय व गले के द्वारा भीतर की वायु को धीरे धीरे खींचकर मुख में धारण करे। 'आशक्ति कुम्भकं कृत्वा धारयेदविरोधितः॥'

इस भाँति बिना कष्ट जब तक धारण कर सके धारण करने के पश्चात् धीरे धीरे वायु परित्याग कर दे।

प्रतिदिन नियमित समय पर अभ्यास करना चाहिये और धीरे धीरे बढ़ाना चाहिये। यदि काम से विवश होकर बराबर ही बन्द हवा में रहना पड़े तो जभी अवसर मिले तभी खुली हवा में जाकर इस क्रिया को करे। यही क्रिया फुपफुस के आयतन वृद्धि करने में सब से अधिक उत्कृष्ट है।

प्राणायाम करते समय मन को सब चिन्ताओं से अलग रखना चाहिये और ईश्वर का सतत चिन्तन करते रहना चाहिये।

इस व्यायाम से शरीर को थकाना न चाहिये। सुख से जितना हो सके उतना ही करना चाहिये।

आजकल भारतवर्ष में यक्ष्मा रोग का प्रकोप अधिक है। प्राणायाम से यह जड़ सहित नाश हो सकता है।

प्राणायाम के सम्बन्ध में कई बड़े बड़े ग्रन्थ हैं—जिनमें ८ प्रकार के कुम्भक कहे हैं और बतलाया है कि किस ऋतु में कौन सा कुम्भक करना चाहिये। प्राणायाम से प्रेम रखने वाले स्त्री पुरुषों को उन्हें पढ़ना चाहिये।

प्राणायाम से विशेष रुचि रखनेवालों को किसी अभ्यासी से सीखकर इसका अभ्यास बढ़ाना ठीक होगा। क्योंकि प्राणायाम की क्रिया ठीक रीति के न होने पर इससे उल्टी हानि होती है।

१८—मादक द्रव्य

मादक द्रव्यों से बढ़ कर मनुष्य जाति की हानि और किसी दूसरी वस्तु से नहीं हो रही है। इससे हमारे धन, स्वास्थ्य, जीवन का नाश तो हो ही रहा है, इससे हमारी भावी सन्तति भी दिन दिन निर्बल, निस्तेज होती जा रही है। जिस अभागे देश में आधे लोगों को भर-पेट भोजन नहीं मिलता, कितने माता के लाल अन्नाभाव से अकाल ही इह लीला को समाप्त करते हैं, जहाँ की ललनायें रोटी के टुकड़े के लिये अपने सतीत्व को पैसे के मोल बेचने को वाध्य हो रही हैं, वहाँ पर मादक वस्तुओं के प्रचार होने से बढ़ कर और दुर्भाग्य की क्या बात हो सकती है। यों तो मादक द्रव्यों से हर देश, हर जाति के लोगों की अपरिमित हानि हो रही है, फिर भी भारतवर्ष जैसे मुहताज देश के लिये तो इसका प्रचार बड़ा ही भयंकर है। आज भारतवर्ष के जिस शहर, जिस कस्बे अथवा गाँव में चले जाइये आठ-आठ, दस-दस, वर्ष के बालक सिगरेट-बीड़ी पीते नज़र आयेंगे। क्या यह दृश्य मर्मान्तक नहीं है? ये बालक युवावस्था को प्राप्त होने पर देश व जाति की सेवा क्या करेंगे? अपनी जीवन यात्रा को भी चलाने योग्य नहीं रह जायेंगे। ऐसे निर्धन देश में भी आठ आना रोज़ कमाने वाला मज़दूर चार आना अपने शराब व गाँजे में उड़ा डाले, फिर भला वह अपने बाल-बच्चों का पालन-पोषण किस प्रकार कर सकता है।

यद्यपि मादक द्रव्य मनुष्य जाति का हर प्रकार से हानि कर रहे हैं, किन्तु यहाँ पर इससे स्वास्थ्य पर क्या असर पड़

रहा है, हमारी जीवन शक्ति का किस प्रकार ह्रास हो रहा है, इसी पर मुख्यतया विचार करेंगे। मादक द्रव्यों का सेवन क्या है, अपने लिये जीते जी कब्र का खोदना है। इसका सेवन करने वाला अधिक आयु तक नहीं जी सकता। इसकी लत बहुत बुरी है। और आदतों को तो आदमी किसी प्रकार छोड़ भी सकता है, परन्तु जिन्हें नशीली चीजों के सेवन की आदत पड़ जाती है उसे छोड़ना असम्भव सा प्रतीत होने लगता है। इसे एक बड़ा भारी रोग कह सकते हैं। रोग की औषधि हो सकती है, किन्तु इसकी कोई औषधि नहीं, यह ला-इलाज मर्ज़ है। उसके अन्तर्गत कई वस्तुयें हैं; किन्तु यहाँ पर शराब, गाँजा, भाँग, चरस, तम्बाकू, अफीम, कोकीन और चाय-कहवा इन्हीं पर विचार किया जाता है।

शराब

शराब मादक द्रव्यों में सब से भयानक है। इसके सेवन से हज़ारों घर नष्ट हो गये हैं। और देशों में इसके प्रचार को रोकने के लिये अथक आन्दोलन हो रहे हैं। अमेरिका, रूस आदि ने तो सदा के लिये तिलाञ्जलि दे दी है। परन्तु एक हमारा ही देश है जहाँ पर इसे रोकने के लिये बड़ा ही कम उद्योग हुआ है। और उद्योग हो कैसे, जब कि गवरन्मेण्ट ही इसका प्रचार बन्द नहीं कर रही है। यद्यपि असहयोग आन्दोलन के समय इसका प्रचार बहुत कम हो गया था, कितनी भट्टियाँ टूट गई थीं, परन्तु आज फिर भी उसी जोश से इसका प्रचार है।

शराब में एक प्रकार का विष होता है जिसे आलकोहल कहते हैं। जिस श्रेणी की शराब होती है; उसी मात्रा में वह

एक विष भी है। वाइन (Wine) में १० फ़ी सदी, बियर में—जो एक हलकी शराब समझी जाती है—३ फ़ी सदी, व्हिस्की ब्राण्डी (Whisky Brandy) में ४० से लेकर ६० फ़ी सदी तक अर्थात् आधे से भी अधिक आलकोहल होता है। मज़ा तो यह है कि जिस शराब में जितना अधिक आलकोहल होता है, वह उतनी ही अच्छी समझी जाती है। क्योंकि उससे नशा अधिक होती है।

यह विष कितना भयानक और बुरा प्रभाव डालने वाला होता है; इस पर डाक साहब नाम के एक प्रसिद्ध डाक्टर ने अच्छा प्रकाश डाला है। आप लिखते हैं "आलकोहल एक सूक्ष्म-विष है जो पलक मारते ही समस्त शरीर में फैल जाता है, रुधिर, नाड़ियों तथा मस्तिष्क के कार्य में विघ्न डाल देता है और सूजन पैदा करने के अतिरिक्त भिन्न भिन्न गोलकों को बिगाड़ देता है। कभी यह समस्त शरीर को अत्यन्त हानि पहुँचाता है।"

अब आप ही सोचें कि ज़रा सा विष खा लेने से मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। फिर जो रोज़ रोज़ शराब के रूप में विष का पान करते हैं उनको कहाँ तक नुकसान पहुँचता है; यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है। डाक्टरों ने शराबियों के शरीर को चीर-फाड़ कर देखा है तो उन्हें पता चला है कि उनके शरीर के भीतर के सारे अवयव प्रायः विषाक्त हो जाते हैं। अँतड़ियाँ प्रायः सड़ जाती हैं और दिमाग़ तो बिलकुल कमज़ोर हो जाता है। पिछले प्रकरण में बताया जा चुका है कि दिमाग़ हमारे शरीर का राजा है; उसके संचालित करने से खाना-पीना, चलना-फिरना, सोना आदि प्रत्येक

क्रिया होती है। जब शराब पीकर आदमी मतवाला हो जाता है तो उसका दिमाग़ उसके क़ब्ज़े में नहीं रहता, इसी से वह अगटसगट बोलने लगता है और उसके पाँव ठीक तरह से नहीं पड़ते हैं और वह लड़खड़ा कर सड़क के किनारे अथवा किसी नाली में गिर पड़ता है। परन्तु केवल नशा की हालत में दिमाग़ पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ता; किन्तु धीरे धीरे दिमाग़ की संचालक शक्ति क्षीण होती जाती है और अन्त में वह शक्ति यहाँ तक कमज़ोर हो जाती है कि उसका प्रभाव प्रायः नहीं के बराबर हो जाता है। ऐसी दशा में मनुष्य पागल हो जाते हैं और किसी किसी दशा में उनकी मृत्यु तक हो जाती है। इङ्गलैण्ड, जर्मनी आदि देशों के, जहाँ पर शराब ख़ूब पिया जाता है-डाक्टरों ने अस्पताल के रोगियों की जाँच करके पता लगाया है कि अधिकांश बीमारियाँ शराबियों को सताती हैं और संक्रामक बीमारियों का पहला आक्रमण तो इन्हीं लोगों पर होता है। एमप्लेटिन महोदय इस विषय पर लिखते हुए कहते हैं "आलकोहल का शरीर के केन्द्र स्थल पर बड़ा भयानक प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि शराब पीने वालों में बहुत से पागल हो जाते हैं। यही नहीं किन्तु आलकोहल का अधिक असर सन्तान तक जाता है। शराबियों की सन्तान बहुधा मूर्खता, मिरगी, पागलपन, क्षयी रोग आदि आदि बीमारियों की शिकार हो जाती हैं।"

शराबी लोग अपने साथ अपनी सन्तान को भी ले डूबते हैं। ठीक ही है कि "बाण बाण गये, नौ हाथ का पगहा भी लेते गये" आगे चलकर उक्त महोदय कहते हैं—

"सचाई यह है कि शराब पीने वाले लोग अत्यन्त निर्बल होते हैं। हर एक बीमारी इन लोगों को उन लोगों से कहीं

अधिक सताती है जो शराब नहीं पीते।" बहुत से शराब के प्रेमी यह दलील पेश करते हैं कि शराब पीने से शरीर में शक्ति और उत्तेजना और फुर्ती आती है, परन्तु उनकी यह दलील बिल्कुल असंगत है। हाँ, यह ठीक है थोड़ी देर के लिये उन्हें कुछ उत्तेजना मालूम पड़ती है; परन्तु इस उत्तेजना का भी बुरा प्रभाव पड़ता है। जैसे हलवाहा अथवा इक्केवान अपने बैल अथवा घोड़े को चाबुक लगा देता है और वह जल्दी जल्दी चलने लगता है, किन्तु बार बार चाबुक लगाते लगाते वह जल्दी थक जाता है और उसकी गति बिल्कुल मंद पड़ जाती है। यही हालत शराबियों की है।

पाश्चात्य शिक्षा से रँगे हुए बहुत से लोगों का ऐसा विचार है कि जीवन के लिये शराब का थोड़ा सा अभ्यास आवश्यक और लाभप्रद है परन्तु उनका यह भ्रम मात्र है। डाक्टर टी० एल० निकल्स (Dr. T L. Nickles) लिखते हैं—जीवन के लिये आलकोहल को किसी रूप में और किसी परिमाण में भी जरूरत नहीं। संभव है कि हल्की शराबों से कम हानि पहुँचती हो परन्तु उनसे लाभ पहुँचना तो संभव ही नहीं। यदि उनमें खाद्य पदार्थ होता भी है तो वह खमीर उठने से नष्ट हो जाता है। इसलिये जिस शराब को लोग पीते हैं उसमें जोश दिलाने वाले, नशा करने वाले और बीमारी उत्पन्न करने वाले गुण होते हैं। करोड़ों आदमियों ने कभी शराब नहीं पी और कोई कह नहीं सकता कि उनकी दशा किसी अंश में भी बुरी हो।"

अफीम

अफीम का व्यवहार भी आजकल संसार के कई देशों में होता है, कुछ देशों में तो इससे औषधियाँ तैयार की जाती

हैं और कुछ देशों में नशे के तौर पर इसका इस्तेमाल किया जाता है। नशे के तौर पर इस्तेमाल करने वालों में भारतवर्ष तथा चीन मुख्य हैं। आज चीन अफीम ही के कारण बर्बाद हो रहा है। केवल २५-३० वर्ष के अन्दर चीन में अफीम का प्रचार बढ़ा है उसे देख कर आश्चर्य होता है। इतने ही समय में चीनी इतने निकम्मे और निर्बल हो गये कि संसार की दूसरी जातियाँ इसे निगलने को तैयार हैं। जापान तो इसका चिर-शत्रु हो रहा है। चीनी अब इससे पिण्ड छुड़ाने के लिये कोशिश कर रहे हैं फिर भी अभी वहाँ पर इसका पूरा प्रभाव है। भारतवर्ष में भी बहुत से लोग इसका इस्तेमाल करते हैं। राजपूताने में इसका विशेष प्रचार है। इसी से राजपूतों की वीर जाति निर्बल और निस्तेज होती जाती है।

और नशा से तो जल्दी छुटकारा भी होता है परन्तु इससे छुटकारा होना बहुत कठिन हो जाता है। इसका नशा बड़ा कड़ा होता है। इसलिये जब अफीमची को अफीम नहीं मिलती, वह बड़ा बेहाल हो जाता है। जो अफीम के ज्यादा इस्तेमाल करने वाले होते हैं, वह अफीम न मिलने पर साँप से कटवा कर अफीम के नशे की पूर्ति करते हैं। ऐसे कई साधुओं को लेखक ने स्वयं देखा है। बहुत मिलों तथा फर्मों में काम करने वाली स्त्रियाँ अपने बच्चों को अफीम खिला कर काम करने को जाती हैं, किन्तु बहुत से बच्चे तो सोये ही रह जाते हैं। ऐसे बच्चे यदि भाग्यवश जीते बच जाते हैं, तो बहुत निर्बल और मूर्ख होते हैं तथा अकाल ही में मृत्यु के शिकार होते हैं। और नशों को ज्यादा खाने से उतनी हानि नहीं होती जितनी इससे। जरूरत से ज्यादा खाया कि जान जाने तक का भय रहता है। भारत में बहुत सी स्त्रियाँ अफीम खाकर

आत्म-हत्या कर लेती हैं। अफीम खाने से बुद्धि हीन होती है और दिमाग़ खुश्क बना रहता है, फिर भी खुश्की दूर नहीं होती। चेहरे की रौनक जाती रहती है और दिन दिन वीर्य पतला पड़ता जाता है। अफीमची लोगों का शौच बहुत देर में उतरता है। आगे चलकर बद्धकोष्ठ आदि बीमारियों के शिकार बनते हैं। हर काम के करने में सुस्ती मालूम पड़ती है और स्नान आदि करने में उन्हें बड़ा कष्ट मालूम होता है। अफीम खाने से फेफड़े कमज़ोर पड़ते जाते हैं और स्वास तथा खाँसी जैसी भयंकर बीमारियाँ बहुत जल्दी हो जाती हैं। हम नहीं समझते कि इस विषैले नशा का लोग क्यों उपयोग करते हैं जो हमारे पुरुषार्थ, शरीर और धन को मिट्टी में मिला देता है।

भाँग

भाँग का प्रचार उत्तरी भारत में बहुत है। जिस प्रकार शराब का छोटी जातियों तथा नव्य शिक्षित लोगों में अधिक प्रचार है, वैसे ही भाँग का उच्च कुलाभिमानी ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों में अधिक प्रचार है। बनारस, इलाहाबाद, मिर्ज़ापुर तथा मथुरा के भङ्गेड़ी तो बहुत प्रसिद्ध हैं। जहाँ शाम हुई कि लोग कूंडी और सोटा लेकर बैठ जाते हैं और भाँग रगड़ना आरम्भ कर देते हैं। कभी कभी तो दो दो घंटे तक भाँग को रगड़ाई होती है। फिर भाँग पीकर मस्त पड़े रहते हैं। ऐसे लोग प्रायः निकम्मे हो जाते हैं और उनसे कोई दिमाग़ी काम नहीं होता है। लोग इसे आनन्द के लिये पीते हैं और समझते हैं कि और नशों की तरह इसमें हानिकारक द्रव्य नहीं है, परन्तु यह उनका भ्रम है। हाँ! अवश्य है कि और नशों का दिमाग़ पर जल्दी असर पड़ता है किन्तु इसका असर धीरे धीरे और अदृश्य रूप में

पड़ता है। इसके नशे में प्रायः लोग ख़ूब खाते हैं, कभी कभी तो नशे में आहार की दुगनी मात्रा चढ़ा जाते हैं। इससे बड़ी हानि होती है क्योंकि पहले यह दिखाया गया है कि अधिक खाने से कोई लाभ नहीं होता प्रत्युत हानि ही होती है और कई बीमारियाँ भी हो जाती हैं। इसके पीने वाले लोग प्रायः आलसी और बेकार होजाते हैं। इसलिये इसका सेवन कदापि न करना चाहिये।

गाँजा, चरस, तम्बाकू आदि

भारत के प्रायः कम गाँव ऐसे होंगे जहाँ गाँजे और तम्बाकू के अधिक सेवन करने वाले न हों। जहाँ शाम हुई कि भंगेड़ियों की तरह गाँजा पीने वालों का भी समाज इकट्ठा हो जाता है, क्योंकि अकेले पीने में आनन्द ही नहीं आता। इनका जमाव दो-दो, तीन तीन, घंटे तक होता है और कितनी चिलमें उड़ जाती हैं। देहातों में अमीर लोगों के दरवाज़े प्रायः अड्डा हुआ करते हैं जहाँ पर गाँजा चरस पीने वालों का जमाव हुआ करता है। ये अमीर लोग आगे-पीछे अपनी जमीन्दारी तक को बेंच डालते हैं। कितने ग़रीब लोग इसी के पीछे अपनी दो-चार बीघे ज़मीन बेंचकर भीख माँगते फिरते हैं; किन्तु इतने पर भी इनकी आदत नहीं छूटती। जहाँ इससे आर्थिक हानि है वहाँ शारीरिक हानि भी है। गाँजे तथा चरस पीने वालों के शरीर सूखकर काँटे जैसे हो जाते हैं, गाल चिपक जाते हैं, आँखें सुर्ख हो जाती हैं और शरीर में रक्त और मांस का नाम तक नहीं रहता। हमेशा बलगम गिरा करता है और अवस्था ढलते ढलते दमा, खाँसी आदि बीमारियाँ शरीर पर

अधिकार जमा लेती हैं जिससे वे अकाल ही में काल के ग्रास बन जाते हैं।

अब तम्बाकू के विषय में लिखते हैं। इसका प्रचार शिक्षितों और अशिक्षितों, शहरों तथा देहातों में एक तरह है। कोई घर ऐसा न पाइयेगा जहाँ तम्बाकू का किसी न किसी रूप में प्रचार न हो। इसलिए इस विषय पर कुछ अधिक प्रकाश डालना आवश्यक जान पड़ता है।

तम्बाकू को लोग कई रूप में कई प्रकार से व्यवहृत करते हैं:—

(१) सीरा मिली हुई तम्बाकू, जो धूम्रपान के लिए व्यवहार में लायी जाती है, इसे हुक्के पर रखकर लोग पीते हैं। इसका प्रचार देहातों में प्रायः सभी श्रेणी के पुरुषों तथा स्त्रियों में है। बहुत से ऐसे लोग हैं जो दिन भर में प्रायः अस्सी अस्सी, सौ सौ चिलमें तक पी जाते हैं। कहना न होगा कि ऐसे लोगों का सिवाय तम्बाकू पीने के और कोई काम भी नहीं होता। बहुत से स्थानों में ऐसा रिवाज है कि जिसको जाति से बहिष्कृत करते हैं, उन्हें अपना हुक्का नहीं देते।

(२) चुरुट—तम्बाकू के पत्ते पर लपेट कर बनता है परन्तु सब प्रकार के तम्बाकू के पत्तों पर नहीं बनता, केवल चटगाँव की तम्बाकू ही से बनता है।

(३) बीड़ी, सिगरेट—ये प्रायः एक ही तरह से बनते हैं। अन्तर यही है कि बीड़ी देश ही में बनती है और सिगरेट विदेश में। सिगरेट भी सिगार वा चुरुट ही की तरह बनता है। अन्तर यही है कि केवल तम्बाकू को पतले कागज़ पर

लपेट देते हैं। साधारणतः यह विदेश से आता है। बीड़ी निकृष्ट, रद्दी तम्बाकू के पत्ते का चूरा लेकर पलास या तूते के पत्ते में लपेट कर बनायी जाती है। इसका प्रचार अंगरेज़ी पढ़े-लिखे लोगों तथा विद्यार्थियों में विशेष करके है।

(४) दोखता—यह खाने की तम्बाकू में कई भाँति के मसाले डाल कर बनाई जाती है। इसका प्रचार मर्द तथा स्त्रियों में एक समान है। प्रायः अमीर लोगों के घरों में इसका अधिक प्रचार है। इसका व्यवहार साधारणतः पान के मसाले की भाँति होता है।

(५) ज़रदा—इसे पान के साथ खाते हैं। तम्बाकू का चूरा करके झाड़ लेते हैं और उत्तम गुलाब जल, कस्तूरी, कत्था आदि सुगन्धित मसाले डाल कर तैयार करते हैं।

(६) सुरती—काली काली तम्बाकू की गोली को सुरती कहते हैं। तम्बाकू के रस को कई प्रकार के मसाले के साथ पकाकर बनाते हैं। काशी की सुरती प्रसिद्ध है जो ८०) सेर तक बिकती है।

(७)—(सुंघनी) यह पिसी हुई तम्बाकू है। तम्बाकू में मसाले तथा सुगन्धित द्रव्य डाल कर इसे बनाते हैं। ब्राह्मणों तथा पंडितों में इसका विशेष प्रचार देखा जाता है।

(८) सूखा—(सुरती) सूखी तम्बाकू में चूना डाल कर हाथ से मसल कर खाते हैं। इसका व्यवहार युक्त प्रान्त तथा बिहार में अधिकतर है।

तम्बाकू के सेवन करने वालों का प्रायः ऐसा विश्वास है कि इनमें नुकसान करने वाली कोई चीज़ नहीं होती। परन्तु

डाक्टरों तथा वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि इसमें निकोटिन (Nikotin) नामक एक विष होता है, यह बड़ा भयानक होता है। शरीरतत्वज्ञ लोग कहते हैं कि यह विष तम्बाकू के व्यवहार करने वालों के शरीर में बहुत नुक़सान पहुँचाता है। एक तम्बाकू का अच्छा व्यवहार करने वाला पुरुष २४ घंटे में जितना तम्बाकू इस्तेमाल में लाता है, उसका स्वास्थ्य नाशक विष निकोटिन इतना होता है कि उतना सब एक बार में कोई खाले तो निस्सन्देह उसी दम मृत्यु हो जाय।

तम्बाकू का विष शरीर पर दो प्रकार से काम करता है—पहले तो इसका विष हमारे शरीर में घुसकर जिन जिन यन्त्रों को छू जाता है, उनमें वैलक्षण्य उत्पादन करता है। दूसरे शरीर के भीतर घुसने के पूर्व यह रक्त के साथ मिलकर स्नायुवों में वैलक्षण्य पैदा करता है।

चुरुट, सिगरेट, बीड़ी अथवा हुक्के द्वारा धूम्रपान करने से तम्बाकू का धुआँ पहले मुख-रन्ध्र में जाता है वहाँ से श्वास नली के भीतर होकर फुफ्फुस में जाने के कारण यह श्लैष्मिक झिल्ली में प्रदाह पैदा करता है। इससे सूखी खाँसी, गले में पीड़ा, कण्ठ स्वर की विकृति और श्वास रोग की उत्पत्ति होती है। जो हुक्का न पीकर जरदा, दोख़ता, सुरती आदि खाते हैं उनके स्वास नली में तम्बाकू का धुआँ नहीं जाता, परन्तु तम्बाकू का रस पाकस्थली में पहुँच कर बहुत जलन करता है जिसके कारण मुँह में पानी भर आता है और मदाग्नि आदि अनेकों रोग घर कर लेते हैं।

इसके बाद इस रस का विष श्वास नली व पाकस्थली में हो कर रुधिर में मिलता है और शरीर के सब स्थानों में

पहुँच जाता है। इस तरह पर हृत्पिण्ड के काम में विलक्षणता उत्पन्न करता है। हृत्पिण्ड स्पन्दित हो जाता है, और छाती कनकन करने लगती है। मस्तिष्क दुबला हो जाता है, सिर घूमने लगता है, मांस व पेशियाँ शिथिल हो जाती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि काम करने से अरुचि, उद्यमशीलता, स्मरणशक्ति का ह्रास, स्नायुओं की दुर्बलता आदि उपसर्ग तम्बाकू सेवन करने वालों पर अपना अधिकार जमा लेते हैं। यदि तम्बाकू का सेवन बढ़ जाता है तो आँखों के मूल स्नायु में जलन होती है, जिससे आँखें खराब हो जाती हैं। इससे जीभ की अस्वाभाविक शक्ति घट जाती है। अमेरिका के एक डाक्टर ने तो यहाँ तक लिखा है कि तम्बाकू के सेवन से ध्वजभंग (नपुंसक रोग) भी हो सकता है।

दोखता, चुरुट, सिगरेट तो तम्बाकू के पीने से भी, अधिक हानि पहुँचाते हैं। क्योंकि इनमें तम्बाकू की पत्तियों के अतिरिक्त और भी कई चीजें सुगन्धि लाने तथा उत्तेजक बनाने के लिये मिलाई जाती हैं। बहुत से अभागे युवक तथा विद्यार्थी सिगरेट तथा बीड़ी के इतने आदी हो जाते हैं कि यदि एक दो-दिन उन्हें बीड़ी-सिगरेट नहीं मिलती तो उनकी तबीयत किसी काम में नहीं लगती। बड़े दुःख की बात है कि हम लोग अँगरेज़ों की नकल केवल उन्हीं बातों में करते हैं जो उनमें दुर्गुण स्वरूप हैं। इंगलैण्ड का जलवायु शीतल है, इसलिये अंगरेज़ों को चुरुट-सिगरेट उतनी हानि नहीं पहुँचा सकते, जितनी भारतवर्ष जैसे उष्ण-प्रधान देश के लोगों को। सिगरेट, बीड़ी, जैसे नाशकारी वस्तुओं का प्रयोग नवयुवकों को यथा-शीघ्र छोड़ देना चाहिये। ऐसा उन्हीं के लिये लाभकारी नहीं है, प्रत्युत भावी सन्तति पर

भी इन नशीली तथा मादक द्रव्यों के सेवन का प्रभाव पड़ता है।

अस्तु ! सौ वर्ष की आयु चाहने वाले युवकों को इन वस्तुओं का कभी भूल कर भी व्यवहार नहीं करना चाहिये।

चाय-कहवा

आज दिन चाय का व्यवहार इतना बढ़ रहा है, जितना कुछ दिन पहले अनुमान भी नहीं किया जा सकता था। इसका प्रसार इतने ज़ोरों से हो रहा है, कि कोई नहीं कह सकता कि थोड़े ही समय में इसका कहाँ तक प्रचार हो जायगा। सब से बड़ी बात तो यह है कि इतना इस्तेमाल वही लोग ज्यादा कर रहे हैं, जो अपने को शिक्षित सभ्य कहलाने का दम भरते हैं। उनका ऐसा अनुमान है कि चाय में सिवाय स्वास्थ-प्रद तथा लाभ-जनक द्रव्य के और कोई दूषित वस्तु नहीं होती। साथ ही इसके पीने से हरारत दूर हो जाती है और कब्ज़ की शिकायत नहीं रहने पाती तथा पाखाना साफ़ होता है। परन्तु ऐसा विचारना उनका भ्रम मात्र ही है।

चाय भी एक प्रकार का नशा है। जैसे और नशीली वस्तुओं की आदत नहीं छूटती और उनके समय पर न मिलने से जी उचट जाता है, तबीयत भारी हो जाती है यही बात चाय की भी है। डाक्टरों ने जाँच करके पता लगाया है कि इसमें भी एक प्रकार का विष होता है। जो अन्य नशीली वस्तुओं की भाँति शरीर पर बहुत बुरा प्रभाव डालती है। चाय अथवा काफ़ी में एक उत्तेजक पदार्थ रहता है जिससे हरारत तथा

थकावट कुछ देर के लिये हट जाती है। इसका कारण उनकी उष्णता है। इनमें नशा करने वाला जो द्रव्य होता है, उससे मन में एक प्रकार का क्षणिक उत्साह, फुर्ती आ जाती है। परन्तु आगे चल कर शरीर पर बिना बुरा प्रभाव पड़े नहीं रहता। इनमें नींद रोकने की भी शक्ति होती है, यहाँ तक ज़रूरत तथा आदत से अधिक चाय पीने से नींद बिल्कुल नहीं आती।

बहुत से लोगों को चाय की यहाँ तक आदत पड़ जाती है कि बिना चाय पिये उन्हें पाख़ाना ही नहीं उतरता; परन्तु इसका कारण चाय नहीं है, किन्तु चाय का गर्म पानी है। यदि गर्म पानी का यों भी इस्तेमाल किया जाय तो पाख़ाना जल्दी से उतर सकता है। यह उन्हीं लोगों के लिये है जिनको साफ़ दस्त नहीं होता। जिन्हें साफ़ दस्त होता है उनको भी चाय के व्यवहार से ऐसी आदत पड़ जाती है कि बिना चाय के पाख़ाना साफ़ नहीं होता। ऐसे लोगों को यात्रा में बहुत कष्ट होता है। इससे स्पष्ट है कि चाय पाचन-क्रिया को स्वाभाविकता को बिगाड़ देती है। चाय पीने वालों के कोठे में प्रायः एक प्रकार की दाह होती है। इसके पीने से हृदय की क्रिया बड़ी तेजी से शुरू होती है। इसलिये साथ ही स्नायु समूह में कम्प छूटता है और दिमाग़ में क्षोभ उत्पन्न होता है। प्रायः ऐसा देखने में आया है कि बहुत व्यवहार करते करते इसका क्षोभ सहन नहीं होता। चाय पीने से भूख मन्द पड़ जाती है, मलावरोध होता है और कितने ही लोगों की देह टूटने लगती है। चाय के समान काफ़ी भी हानिकर वस्तु एवं त्याज्य है।

अस्तु, इस पुस्तक में संक्षेप में, मादक वस्तुओं के सेवन

से शरीर पर जो हानिकारी प्रभाव पड़ते हैं, उनका वर्णन किया गया है। यह विषय बड़ा भारी है और इस पर जितना लिखा जाय थोड़ा है। यहाँ पर तो यही दिखलाया गया है कि अधिक अवस्था तक जीने की इच्छा रखने वाले मनुष्यों को (भला ज्यादा उम्र तक जीने की किसको प्रबल इच्छा नहीं होती ?) मादक द्रव्यों का अवश्यमेव त्याग करना चाहिये। तभी वे स्वयं स्वस्थ रह कर सौ वर्ष तक जीते रह सकते हैं और उनकी भावी सन्तति भी निरोग, बलवान तथा दीर्घायु हो सकती है।

१६—रोगोत्पादक कीट

यों तो शरीर में रोग का वास तभी होता है जब जीवन में प्रायः अनियमितता और असंयम की वृद्धि होने लगती है। पर कुछ कीट ऐसे हैं, जिनका आहार ही मनुष्य का रक्त है। इसके सिवा कुछ ऐसे भी हैं, जो प्रत्यक्ष रूप से तो मनुष्य को कुछ विशेष हानि नहीं पहुँचाते; पर अप्रत्यक्ष रूप से उनसे बहुत हानि पहुँचती है। हैजा और प्लेग से हम कितना डरते हैं। बात यह है कि हम यह समझ गये हैं कि ये बीमारियाँ प्राणघातक हैं। पर कुछ रोगोत्पादक कीट हमारा कितना संहार करते हैं, इसका हमें बिल्कुल पता नहीं रहता। इस स्तम्भ में हम उन्हीं जन्तुओं के सम्बन्ध में कुछ ज्ञातव्य बातें लिखेंगे।

मक्खी

मक्खी देखने में कितनी सीधी जान पड़ती है और उसके जीवन को हम लोग कितना क्षण-भंगुर समझते हैं। इच्छामात्र करने से वे मसल दी जा सकती हैं। पर वे निरन्तर हमें इतनी हानि पहुँचाती हैं जिसका कुछ ठिकाना नहीं। संक्रामक रोगों का विष ये मक्खियाँ ही लाती हैं। यदि हैजे के मरीज के उच्छिष्ट पदार्थ पर बैठी हुई मक्खी किसी स्वस्थ व्यक्ति की भोजन की थाली पर बैठ जाय और किसी वस्तु को छू दे तो उस व्यक्ति की ख़ैरियत न समझिये। इसी प्रकार क्षयरोग, प्लेग, चेचक आदि रोगों को भी बात की बात में ये मक्खियाँ ही फैलाती हैं। भोजन के पदार्थों से लेकर विष्टा तक पर इनका

समानरूप से स्नेह रहता है। ये किसी के साथ पक्षपात नहीं करतीं, अथवा यह समझिये कि इन्हें अच्छे और बुरे का ज्ञान ही नहीं रहता। इन्हें तो बस रस से काम है फिर वह कैसा ही क्यों न हो। रस के रूप में जो विष ये लाती हैं, सो तो लाती ही हैं, साथ ही रोगों के सहस्रों कीटाणु भी ये अपने पंखों में ले आती हैं। ये कीटाणु मनुष्य के पेट में जाकर उसे बीमार कर देते हैं।

ये अपने पंखों में इतने अधिक कीटाणु कैसे ले आती हैं, यह भी एक अनोखी बात है। एक तो मक्खी का आकार ही कौन बहुत बड़ा होता है। क़रीब-क़रीब गेहूँ के एक छोटे दाने के बराबर होती हैं। फिर भी उसके बदन से सहस्रों कीटाणु लिपट जाते हैं। ये कीटाणु इतने छोटे होते हैं कि सहज में देख नहीं पड़ते। इन्हें देखने के लिए अणुवीक्षण की आवश्यकता पड़ती है।

मक्खी के शरीर को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं। सिर, छाती और पेट। इन हर एक भागों में हवा से भरी थैलियाँ होती हैं। इन्हीं थैलियों के सहारे मक्खी उड़ा करती है। इसके सिर पर दो बड़ी बड़ी आँखें होती हैं। ये आँखें अनेक छोटी छोटी आँखों से मिलकर बनती हैं। इनके द्वारा मक्खी बिना सिर हिलाये डुलाये अपने चारों ओर देख सकती है। इसके चार पर और छै पैर होते हैं जिनमें बहुत छोटे-छोटे रोयें होते हैं। इन्हीं रोओं पर बहुत से कीटाणुओं को मक्खी साथ लाती हैं। इन कीटाणुओं को अपने साथ लिए हुए जब मक्खी भोजन पर बैठ जाती है तब वे कीटाणु भोजन में मिल जाते हैं। इसी प्रकार वह जितने मनुष्यों के भोजनों पर बैठती है, सब पर एक साथ बहुत से कीटाणु छोड़ जाती हैं।

मक्खी के मुँह के पास एक सूँड़ भी होती है। इस सूँड़ के पास एक नन्हीं सी नली होती है। जब मक्खी किसी के भोजन पर बैठती है तो अपने सिर के निचले भाग से यही नली निकालती है। उस नली के द्वारा वह अपना थूक उस भोजन की वस्तु के उस भाग पर पहुँचाती है जिस पर वह अपना अधिकार जमाती है। उसके थूक के मिल जाने से भोज्य पदार्थ का कुछ भाग कुछ लसदार हो जाता है। फिर मक्खी उसी लसदार पदार्थ को चूस लेती है। जिस समय मक्खी अपनी नली निकालती है उसी समय उसके थूक के साथ उसके मुख भाग में लिपटे हुए कीटाणु उसमें मिल जाते हैं और फिर उसके थूक के साथ भोज्य पदार्थ में जा मिलते हैं। इस दशा में मनुष्य कितना ही स्वस्थ क्यों न हो, यदि उसके भोजन में वे कीटाणु प्रवेश कर गये तो वह बीमार हुए बिना बच नहीं सकेगा।

मक्खियों की वृद्धि भी बहुत शीघ्रता से होती है। एक मक्खी १२० अंडे देती है। सात-आठ घंटों में अंडे छोटे छोटे सफेद कीड़े बन जाते हैं और जिन स्थलों में जन्म पाते हैं, वहीं, उसी गन्दगी से, अपने ख़ूराक़ भी पा जाते हैं। पाँच दिनों तक अपने बदन को एक खोल से ढके हुए रखते हैं। उन दिनों उन्हें खाने-पीने की भी बिल्कुल ज़रूरत नहीं पड़ती। इस दशा में ये थूपा कहलाते हैं। और पाँच छै दिन व्यतीत हो जाने के अनन्तर ये थूपा फट जाते हैं और उनमें से मक्खी निकल आती है। ये मक्खियाँ भी थोड़े ही दिनों में अंडे देने योग्य हो जाती हैं। थोड़े दिनों में लाखों की तादाद में हो जाती हैं।

मक्खियों की हानि से बचने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने घरों के इधर-उधर गोबर कूड़ा तथा गंदगी का कोई सामान न रहने दें। इसके सिवा खाने पीने की चीजों को भी जालीदार सन्दूकों में रख कर मक्खियों से उनको रक्षा करते रहें। यदि अपने रसोई घरों को भी जालीदार किवाड़ों से सुरक्षित रख सकें तो और भी अच्छा है। इस प्रकार जब हमारे घरों में कहीं भी मक्खियों को आश्रय न मिलेगा तब वे स्वयं अन्यत्र आसन जमायेंगी और हम उनके द्वारा फैलनेवाली बीमारियों से सर्वदा मुक्त रहेंगे।

मच्छड़

मच्छड़ भी एक शरीर के दूसरे शरीर में बीमारी के कीटाणु फैलाने वाला जन्तु है। हर प्रकार के रोगों के कीटाणुओं से संबन्ध न रख कर यह केवल मलेरिया के कीटाणुओं से संबन्ध रखता है। जब कभी मच्छड़ किसी मलेरिया ग्रस्त रोगी को काटता है तो उसका रक्त चूमते हुए उसके कीटाणु भी उस रक्त के साथ ले आता है। मच्छड़ के शरीर में पहुँच कर वे कीटाणु बहुत अधिक संख्या में बढ़ते हैं, ऐसी दशा में जब कभी वह किसी स्वस्थ व्यक्ति को काट पाता है तो अपने अगणित कीटाणुओं के द्वारा उसे बात की बात में बीमार कर के ही छोड़ता है।

मच्छड़ों से बचने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि हम बस्ती के आस-पास पानी के गड्ढे बिलकुल न रहने दें। यदि कहीं जमीन पर पानी रहेगा तो वह स्थान मच्छड़ों से मुक्त नहीं रह सकेगा। क्योंकि एक चुल्लू भर पानी में भी मच्छड़ अण्डे दे देता है और मच्छड़ों के अण्डों की वृद्धि भी

बहुत जल्दी होती है। बारह घण्टे में मच्छड़ों के अण्डे छोटे-छोटे कीड़े हो जाते हैं। ये लार्वा कहलाते हैं। एक सप्ताह में लार्वा से प्यूदा और फिर तीन दिन बाद पूरे मच्छड़ बन जाते हैं। इस प्रकार कुल बारह दिनों में मच्छड़ों के अंडे मच्छड़ बन कर पुनः अंडे देने के लिए पूर्ण समर्थ हो जाते हैं।

आजकल मच्छड़ों से बचने के लिए एक नयी औषध ईजाद हुई है इससे भी मच्छड़ों से रक्षा होती है।

पिस्सू

मक्खियों तथा मच्छड़ों की भाँति पिस्सू नाम का एक जन्तु और होता है जो बहुधा बीमारी फैलाने में बड़ा सहायक होता है। पहले पहल यह भी एक कीड़े की भाँति होता है फिर प्यूदा बनता है और इसके बाद प्यूदा से पिस्सू हो जाता है। यह चूहों का ख़ून चूसता है और उन्हीं के बदन में वास करता है। यह जब कभी मनुष्य को काट लेता है तब वह मनुष्य अवश्य बीमार पड़ जाता है।

यह जन्तु मुख्य रूप से प्लेग फैलाने का काम करता है! जब यह चूहे का खून चूसता है तब साथ ही चूहों के रोगों के कीटाणु भी ले आता है। यदि किसी प्लेग से ग्रसित चूहे का ख़ून उसने चूसा तो समझ लीजिये उसने प्लेग के कीटाणुओं को भी रक्त के साथ चूस लिया है। इस दशा में यदि वह किसी मनुष्य को काट सकेगा तो उसके शरीर में प्लेग के कीटाणु पहुँचा देगा और तब वह अवश्य बीमार हो जायगा।

प्लेग के दिनों में तो बहुधा होता यह है कि ज्यों ज्यों चूहे मरते हैं त्यों-त्यों पिस्सू उन्हें छोड़ कर मनुष्यों पर कब्ज़ा करते हैं। तभी एक साथ अनेक व्यक्ति बीमार पड़ जाते हैं और प्लेग भयंकर रूप धारण कर लेता है। पिस्सुओं से अपनी रक्षा करने के लिए या तो बिल्लियाँ पालकर चूहों को घरों में ही न रहने दें या चूहेदानी से उन्हें बस्ती से बाहर फिकवाते रहें अथवा उनके मरते ही एकदम घर खाली कर दें।

———

२०—कुछ संक्रामक बीमारियाँ

संयम नियम के साथ रहने वालों को बीमारियाँ प्रायः बहुत कम सताती हैं। पर सौ वर्ष की आयु व्यतीत करने में सम्भव है, ऋतु-परिवर्तन अथवा अन्य किसी व्यतिक्रम से शरीर को कोई बीमारी पकड़ ही ले, क्योंकि आखिर शरीर ही ठहरा, कभी न कभी किसी न किसी व्याधि का आक्रमण हो ही जाता है। इसीलिये उससे बचने के लिए हम यहाँ पर उनका भी कुछ वर्णन किये देते हैं।

श्लेष्म (ज़ुकाम)

ज़ुकाम अब इतनी प्रचलित बीमारी हो गई है कि उसे सभी पहचानते हैं। शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो, जिसे कभी ज़ुकाम न हुआ हो। यों तो ज़ुकाम का प्रकोप साधारण रूप से ३-४ दिन तक ही रहता है, पर यदि कभी असंयम से ज़ुकाम बिगड़ जाता है तो इससे अनेक बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इसलिये जब कभी ज़ुकाम हो जाय तो बहुत सावधानी के साथ रह कर उसे यथासम्भव शीघ्र शान्त कर देना ही श्रेयस्कर है।

इस बीमारी में पहले पहल छींकें आती हैं और नासिका के भीतर जलन पैदा हो जाती है। फिर कफ़ पानी के समान पतला होकर नाक से बहने लगता है। कंठ-स्वर बदल जाता है। शरीर कुछ भारी मालूम होने लगता है और हल्का सा ज्वर हो आता है और प्रायः तीन दिन तक रहता है। उन दिनों बदन टूटता है, सिर में पीड़ा होती है, सूँघने की शक्ति

जाती रहती है। छींकें आते समय आँखें लाल हो जाती हैं और उनमें आँसू भर आते हैं। छिनकते छिनकते नासिका लाल हो जाती है और दुखने सी लगती है। कुछ समय बाद कफ़ कुछ गाढ़ा होने लगता है और उसका रंग भी पीला हो जाता है। कभी कभी यह गाढ़ा कफ़ बदबू करने लगता है और कई दिनों तक तबीयत खराब रहती है।

जब कभी ज़ुकाम बिगड़ने लगता है तब खाँसी पैदा हो जाती है, कभी कभी कौवा भी सूज आता है। सिर में दर्द बराबर बना रहता है, यदि ज़ुकाम का विष पेट की ओर बढ़ा तो पेट की झिल्लियाँ सूज जाती हैं और भोजन के बाद रोगी का शरीर भारी हो जाता है। पेट में वायु पैदा हो जाती है और गुड़-गुड़ शब्द होने लगता है, यदि यह रोग पेट से और भी आगे बढ़ा तो आँतें सूज जाती हैं और पेट में दर्द होने लगता है। शरीर भारी हो जाता है और प्रायः आँव तथा उसके साथ रक्त गिरने लगता है।

ज़ुकाम बिगड़ जाने से जब कफ़ अतिशय गन्दा हो जाता है, तब पीनस का भी रोग होने की सम्भावना रहती है। इसके सिवा कभी कभी कान बहने लगता है, कान में पीड़ा होने लगती है और बहरा हो जाने तक की नौबत आ जाती है। इस प्रकार यह ३·४ दिन में ही स्वाभाविक रूप से शान्त हो जाने वाला मर्ज़ जब कभी बिगड़ जाता है तब बड़ा अनिष्ट-कर सिद्ध होता है।

ज़ुकाम के सम्बन्ध में डाक्टरों के प्रायः दो प्रकार के मत हैं। एक पक्ष का कथन है कि अस्वाभाविक रहन-सहन से मनुष्य-शरीर में जो दूषित रस पैदा हो जाते हैं, उनको शरीर

से निकालने के लिए मनुष्य-शरीर की प्रकृति ज़ुकाम की सृष्टि करती है और वे दूषित रस कफ़ के द्वारा निकल जाते हैं। दूसरा मत यह है कि ज़ुकाम संक्रामक रोग है। इसके विशेष कीड़े होते हैं और नासिका के द्वारा प्रवेश करते हैं। ये कीड़े जब २-३ दिन में अपने आप मर जाते हैं तब ज़ुकाम शान्त हो जाता है। ये विषैले कीड़े सर्दी से होते हैं और प्रायः सर्दी से ही ज़ुकाम होता है। प्रकृति ने इसलिये मनुष्य को नासिका में बालों की सृष्टि की है। ये बाल नासिका की झिल्ली को इन विषैले कीटाणुओं के आक्रमण से बचाने के लिये ही होते हैं।

साधारणतया लोगों का ख्याल है कि ठंढ़ी हवा का झोंका खा जाने से ज़ुकाम हो जाता है। इसलिये लोग ठंढ़ी हवा में बाहर निकलने से बचते हैं, आवश्यकता से अधिक कपड़े पहने रहते हैं और बन्द कमरे में सोते हैं। पर असल में यह बात नहीं है। स्वास्थ्य-रक्षण के साधारण नियमों का उल्लंघन हुए बिना ज़ुकाम क्या, कोई भी रोग नहीं हो सकता। अक्सर देखा गया है कि लोग रुचिकर कार्यों में शरीर के साथ ज्यादती कर बैठते हैं। स्नान करने में यदि कभी शरीर को कुछ अधिक सुख मिला तो बहुत देर तक स्नान ही किया करेंगे, अथवा गरम कमरे में बैठे रहने के अनन्तर यकायक ऐसे स्थान में चले जायँगे, जहाँ अत्यधिक ठण्ढ़क है, भोजन करते समय कोई वस्तु अधिक स्वादिष्ट प्रतीत हुई तो उसी को अधिकाधिक मात्रा में खा जायँगे और फिर यह विचार क़तई न करेंगे कि वह पच भी सकेगी कि नहीं। इसके सिवा प्रायः ऐसा भी होता है कि स्वाद के पीछे इस बात का भी ध्यान नहीं रक्खा जाता कि वह पदार्थ अपने शरीर की प्रकृति के अनुसार

हानिकर होगा या लाभकर। निर्बल शरीर के साथ जब कभी ऐसा व्यवहार होगा, तभी ज़ुकाम हो जायगा।

इस प्रकार ज़ुकाम का मुख्य कारण है भोजन की प्रतिकूलता। कफ अधिक मात्रा में पैदा करने वाली चीज़ें खाते-खाते जब कफ अधिक बढ़ जायगा, तब ज़ुकाम होना बिल्कुल स्वाभाविक है। अधिक आहार करने से पाचन-शक्ति बिगड़ जाती है और कब्ज़ ज़ुकाम की प्रथम सूचना है।

अनुभवी डाक्टरों के मत से मनुष्य के भोजन में नीचे लिखे पदार्थों का होना आवश्यक है :—

१. प्रोटीन—यह तत्व शरीर में मांस को बढ़ाता है।

२. चिकनई—यह तत्व शरीर में चर्बी पैदा करने के लिये है। चर्बी शरीर में एक शक्ति है।

३. कार्बोहाइड्रेट—इस तत्व से भी शरीर में शक्ति उत्पन्न होती है। यदि यह पेट में अधिक मात्रा में पहुँच जाता है तो चिकनई की शकल में जमा हो जाता है।

४. नमक—नमक की आवश्यकता तो मनुष्य के लिए अनिवार्य ही है।

५. पानी—पानी शरीर के अन्दर के दोषों को बहा कर निकाल देने के लिए आवश्यक होता है।

६. प्राण तत्व (विटामिन) शरीर में रोग के प्रकोप को शान्त करने के लिये यह तत्व होता है।

ऊपर लिखे तत्त्वों में जब न्यूनाधिकता होगी, तभी शरीर में खराबी पैदा होगी; उदाहरण के तौर पर यदि हमने चिकनई की मात्रा अधिक कर दी, तो कब्ज़ हो जायगा और दस्त प्रारम्भ हो जायँगे। अथवा विटामिन कम खाया तो रोग के शिकार हो जायँगे।

ज़ुकाम का कारण प्रोटीन का अधिक मात्रा में पेट में पहुँच जाना भी है। मांस, मछली, अंडे तथा दाल इनमें प्रोटीन अधिक होता है। इनका अधिक आहार करने से शरीर में टाक्सिन नाम के विष उत्पन्न हो जाते हैं और अंत में ज़ुकाम के रूप में शरीर से निकलते हैं। तर चीज़ें, मिठाई, चावल, सफ़ेद चीनी, नमक, घी, तेल, मांस, मछली ये कफ़ उत्पन्न करने वाली चीज़ें हैं। और कफ़ की ही अधिकता से प्रायः ज़ुकाम होता है। इसलिये ज़ुकाम के लिये ये हानिकर हैं। पालक, गोभी, करमकल्ला, टमाटर, गाजर, ताजे पके फल और थोड़ी मात्रा में सूखे मेवे—ये पदार्थ कफ़ नहीं उत्पन्न करते। इसलिये ज़ुकाम के दिनों में इन्हें खाने से ज़ुकाम का वेग दबा रहेगा। इसके सिवा ज़ुकाम बिगड़ भी न सकेगा।

ज़ुकाम होने के प्रथम कब्ज़ प्रायः हो जाता है। नीचे लिखा हुआ नाश्ता कब्ज़ को शान्त करने के लिये बहुत लाभप्रद प्रमाणित हुआ है—

रात को खूब साफ़ किसी शीशे के बर्तन में दो सन्तरों या नीबू के रस में कुछ मुनक्के या किशमिश या सूखे अंजीर ख़ूब साफ़ कर के भिगो दिए जायँ। बस प्रातःकाल यह रस तथा वे फूले हुए मेवे खा लिये जायँ तो कब्ज़ अवश्य शान्त हो जायगा। चाय और काफ़ी

कब्ज़ को बढ़ाती हैं, इसलिये कब्ज़ रहने के दिनों में इनसे बचना भी आवश्यक है।

क्षय रोग

मनुष्य जीवन का सबसे अधिक भयंकर, अधिक काल तक चलने वाला, प्राणघातक रोग क्षय ही है। यह तपेदिक के नाम से अधिक प्रचलित है। अंगरेज़ी में इसे ट्यूबरक्लोसिस (Tuberculosis) और कंज़म्पशन (Consumption) कहते हैं। डा० मुथ्थू के कथनानुसार साढ़े बारह लाख भारतीय प्रति वर्ष इस मर्ज़ से काल कवलित होते हैं। यह गणना केवल उन रोगियों की है जिन्हें वास्तव में यक्ष्मा का शिकार हुआ समझ लिया जाता है। ऐसे बहु-संख्यक मरीज़ों की तो गणना ही नहीं की जाती है, जिनकी मृत्यु साधारण खाँसी बुख़ार अथवा जीर्ण ज्वर से समझ ली जाती है। इसलिये दीर्घ जीवन लाभ करने का दृढ़ संकल्प रखने वाले व्यक्तियों को इस बीमारी के साधारण कारणों से बचना चाहिये।

सूखी खाँसी आना, सायंकाल ज्वर सा हो आना, कंधों और छाती में दर्द होना, काम करने में शीघ्र थक जाना, नींद काफ़ी न आना, किसी काम में जी न लगना, ज़रा सा कुछ खाते ही पेट भरा सा मालूम होना आदि इसके प्रारम्भिक लक्षण हैं। धीरे धीरे जब यह मर्ज़ बढ़ने लगता है। तब खाँसी का प्रकोप बढ़ जाता है। शरीर की शक्ति घटने के साथ ही साथ शरीर का वज़न भी घट जाता है। सायंकाल ज्वर आ जाता है और रात को पसीना आने लगता है। कफ़ के साथ ख़ून भी गिरने लगता है। अन्त में आदमी बिल्कुल निकम्मा हो

जाता है और निकट भविष्य में तो इस संसार से ही प्रयाण कर देता है।

यह बीमारी परम्परागत रहती है। इसके कीटाणु बहुत छोटे होते हैं। यहाँ तक कि अनुभवी डाक्टरों के कथनानुसार एक इञ्च में २५००० तक कीटाणु स्थान पा जाते हैं। यह बीमारी एक के बाद दूसरे पास वाले को लगती भी बहुत जल्दी है। यहाँ तक कि इस मर्ज के रोगी के थूक से भी सहस्रों कीटाणु फैल जाते हैं। कुटुम्बियों के साथ यह बीमारी बड़ा प्रेम रखती है जिस घर में एक बार पहुँच जाती है। फिर उस घर से इसका निकलना यदि असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य हो जाता है। यदि किसी स्त्री को हो गई है तो उसके पति और बच्चों का इससे बचना बहुत ही मुश्किल होता है।

यों तो यह बीमारी किसी भी अवस्था में हो सकती है, पर युवावस्था में ही यह विशेष रूप से फूलती फलती है। प्रायः १४ वर्ष की अवस्था से ४० वर्ष की अवस्था तक इसका विशेष भय रहता है। ४० वर्ष से अधिक वय वाले व्यक्तियों के यक्ष्माग्रस्त होने की बहुत कम आशंका रहती है।

यों तो सभी बीमारियों का मूल कारण असंयम (बदपरहेज़ी) है। पर इसका तो यह मुख्य कारण है। इसके सिवा वातावरण के साथ भी इसका विशेष सम्बन्ध है। बहुधा उन्हीं घरों के व्यक्तियों में इसका वास रहता है जहाँ धूप नहीं आती, या कम आती है, और गन्दगी बहुत रहती है। अपनी शक्ति से अधिक कार्य-रत रहने तथा अत्यन्त चिन्ता-ग्रस्त रहने से भी यह शरीर में पैठ जाती है और चुपचाप

अपना कार्य करती रहती है। बहुधा देखा गया है कि अन्दर ही अन्दर यह इतनी अधिक पैठ जाती है कि मुख्य चिन्ह खाँसी को प्रगट किये बिना भी सर्वनाश कर बैठती है। गृह-कलह, ऋण-भार, दुर्व्यसन आदि से भी इसका प्रवेश हो जाता है।

भारत में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में यह रोग बहुत पाया जाता है। इसका प्रत्यक्ष कारण यह है कि भारत की सामाजिक स्थिति बहुत गिरी हुई है। स्त्रियाँ खुली हवा में विचरण करने को जन्म भर तरसती रहती हैं। उनका ग्रामीण जीवन एकदम इसी रोग के उपयुक्त बना हुआ है। निरंतर उन्हें अन्धकाराच्छन्न कमरों तथा कोठरियों में काम करना तथा रहना पड़ता है। जिसका मुख्य कारण परदे की प्रथा है। लाखों परिवार ऐसे बताये जा सकते हैं, जिनकी स्त्रियों को इस बात का भी पता नहीं है कि वे जिन प्रकाशहीन कोठरियों तथा कमरों में अपने दैनिक जीवन के चौबीस घंटे व्यतीत करती हैं, उनके अंधकार और गंदेपन में पुरुष तो क्या, पशु अधिक काल तक जीवित नहीं रह सकते।

क्षय रोग के कारणों के सम्बन्ध में डा० मुथ्थू का कथन है कि परदा प्रथा और बाल-विवाह इस महामारी के मुख्य कारण हैं। आपके मत से खान-पान में मांस-मदिरादि का अत्यधिक उपयोग तो इसके मुख्य कारण हैं ही, साथ ही चावल और पतली दाल का अत्यधिक आहार भी किसी अंश तक इसका जिम्मेदार है। राय बहादुर कैप्टेन डी० महाराज कृष्ण कपूर एम्० डी०, पी० एच० ने भी इसके कारण बतलाते हुये लिखा है कि हमारे देश के बालक विद्यार्थी जीवन में प्रवेश करते ही इस महारोग के जाल में जा फँसते

हैं। वे घर पर स्वतन्त्रता के साथ घूमते रहते हैं, खुली हवा, और मेंह में खूब आनन्द से जहाँ चाहते हैं, विचरते हैं! पर छात्रावास के जीवन में जहाँ संकुचित वातावरण में रहे, ज्यों ही अनेक विद्यार्थियों के साथ उन्हें रखना पड़ा, त्योंही उनके शरीर पर प्रतिकूल जल-वायु का ऐसा प्रतिबन्ध लग जाता है कि वे किसी न किसी मर्ज के शिकार हो ही जाते हैं। इस महामारी के सम्बन्ध में भी किसी अंश तक यह बात कही जा सकती है। निवास स्थानों का बेढंगापन, छात्रावासों के कमरों में विद्यार्थियों की संख्याधिक्य इस रोग को निमंत्रित करने से कभी नहीं चूकते। ऊपर से स्वल्प काल में परीक्षाओं का लम्बा कोर्स मस्तिष्क में बलात् डाल ही लेने की प्रवृत्ति भी भयावह हो जाती है। परीक्षाओं के दिनों में तो महीनों ऐसे व्यतीत हो जाते हैं जब छात्रगण ७ घंटे के बजाय ४ घंटे भी नींद भर नहीं सोते और अट्ठारह-अट्ठारह घंटे तक पढ़ते रहते हैं। शरीर से और स्वास्थ्य के साथ उनका यह अत्याचार भी इस महामारी की बहुत कुछ सहायता करता है।

शिकागो के म्युनिसिपल सेनीटोरियम ने इस सम्बन्ध में जो सूचनायें प्रकाशित की हैं, वे विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं। इस महारोग से बचने के लिये ये बड़े काम की सिद्ध होंगी। सूचनायें ये हैं—

१. पेटेण्ट दवाओं का उपयोग मत करो।

२. विज्ञापनी दवाओं के जाल में मत फँसो।

३. क्षय रोग की शर्तिया दवा आज तक नहीं मिली है, यह याद रक्खो।

४. इलाज उसी वैद्य से कराओ जिस पर तुम्हारा विश्वास हो और जो तुम्हारा परिचित और तुमसे सहानुभूति रखने वाला हो।

५. भूख से अधिक कभी मत खाओ। सुगमता से जितना पचा सको, उतना ही खाओ।

६. भोजन नियमित समय और पेट की स्थिति देख कर करो। यदि भूख अच्छी तरह न लगी हो तो भोजन मत करो।

७. अपनी पाचन शक्ति को सदैव मुस्तैद रक्खो।

८. भोजन ख़ूब चबा चबा कर करो।

९. बीच बीच में उपवास करके पाचन शक्ति को आराम देकर उसे तरो ताज़ा रक्खो।

१०. बार-बार आहार मत करो, इससे पाचन शक्ति पर अतिशय भार पड़ जाता है और वह निर्बल पड़ जाती है।

११. जिस आहार को तुम पसन्द नहीं करते, जो तुम्हें रुचिकर नहीं है, उसे कभी मत ग्रहण करो।

१२. यदि अंडे खाते हो तो दिन भर में एक-दो से अधिक कभी मत खाओ।

१३. भोजन के साथ थोड़ा दूध अवश्य पिया करो।

१४. किसी प्रकार की चरबी मत ग्रहण करो।

१५. मक्खन खाओ यह बड़ा लाभदायक है।

१६. थूक में क्षय के कीटाणु होते हैं, इसलिए घर में, फर्श

या दीवाल पर कभी न थूक कर काग़ज, रूमाल या कपड़े पर थूकना और उसे जला डालना अच्छा होगा।

१७. पीकदान में थूकना हो तो उसमें कार्बोनिक एसिड और पानी हमेशा छोड़ रक्खो और दिन में दो बार गरम जल से उसे साफ़ करा दिया करो। कार्बोनिक एसिड और जल का अनुपात १०-२० चम्मच होना चाहिये।

१८. खाँसते-छींकते समय मुँह पर रूमाल लगा लो, जिससे क्षयरोग के कीटाणु इधर-उधर न फैल सकें। फिर उस रूमाल को खौलते हुए गरम जल में धो लिया करो।

१९. क्षय रोग के रोगी को चाहिये कि वह किसी को चुम्बन मत करे—विशेषकर बच्चों का। कारण, उनमें इस रोग के कीटाणु बहुत जल्दी प्रवेश करते हैं।

२०. आराम ख़ूब करो।

२१. जहाँ तक सम्भव हो, खुली हवा अथवा बरामदे में ही रहो। चलने-फिरने या बैठे रहने से लेटे रहना अधिक अच्छा है। यदि शरीर में ज्वर हो तब तो पूर्णरूप से आराम करो।

२२. नहाना नियमित रूप से आवश्यक है। यदि ज्वर हो तो गरम पानी से ही नहा डालो। इसमें नागा न करो।

२३. अँधेरे और कम हवादार मकान में न रहकर धूप आने वाली और हवादार जगह में रहो।

२४. घर के सब कमरों में न जाकर अपने ही कमरे में रहो। इससे तुम्हारे घर के अन्य लोगों की इस मर्ज़ से रक्षा होगी।

२५. अपने भोजन के बर्तनों को घर के भोजन के बर्तनों में कभी मत मिलने दो। अपना जूठा किसी को कभी मत खाने दो।

इस बात का ध्यान रक्खो कि ऊपर लिखे नियमों का पालन करने, बच्चों को अपने पास न आने देने तथा इसका लक्षण देख पड़ने पर ही इलाज करने और शान्ति, आराम, उत्तम ताज़ा भोजन, ताज़ो तथा शुद्ध हवा का प्रबन्ध करने से ही यह रोग दूर हो सकता है।

कुछ विद्वानों का मत है कि यज्ञ-चिकित्सा से भी यह रोग शांत हो जाता है। यह चिकित्सा रोग नाशक औषधियाँ कूट-कर, विधि-पूर्वक घृत इत्यादि मिलाकर अग्नि में जलाने और उन औषधियों के भस्मसात् परमाणुओं से मिश्रित वायु को श्वास तथा अन्य लोम छिद्रों द्वारा रोगी के शरीर में आरोग्य होने तक प्रवेश कराने के आधार पर मुख्य रूप से अवलम्बित है। यज्ञ की आहुतियाँ मन्त्रोच्चारण करते हुए दी जाती हैं। इसके लिए अथर्ववेद कांड ३, अध्याय २, सूत्र ११, का पहला मंत्र है।

मुञ्चामित्वा हविषा जीवनाय कमज्ञात यक्ष्माद्रुत,
राजयक्ष्मात् ग्राहिजग्राह यद्यतेदेनंतस्या इन्द्राग्नी प्रयुमुक्तमेनम्।

दूसरा मंत्र

यदि क्षितायुर्वदि वा परे तो मृत्योरन्तिकं नीत एव।
तमा हरामि निर्ऋतेरूपस्था दस्याषमनं शत शारदाय॥

मलेरिया

यह रोग वर्षा ऋतु में ख़ूब ज़ोर पकड़ता है और शीतकाल तक रहता है। इसमें जाड़ा देकर ज्वर आता है। कहीं कहीं इसे जूड़ी और प्रायः फसली बुखार कहते हैं। यह मच्छड़ों के काटने से ही प्रायः होता है। वर्षा ऋतु के अन्त में मच्छड़ बहुत बढ़ जाते हैं और मलेरिया फैला देते हैं। बस्ती के अन्दर अथवा उसके पास जो छोटे-छोटे गड्ढे होते हैं वर्षा ऋतु में वे सब पानी से भर जाते हैं, मच्छड़ उन्हीं में अण्डे देते हैं। अंडे बारह घंटे के अन्दर ही एक छोटे कीड़े बन जाते हैं। ये कोई एक सप्ताह तक अपने को एक हलकी झिल्ली से ढके रहते हैं और सोया करते हैं। तीन दिन में यह झिल्ली फट जाती है और तब वही कीड़ा एक खासा मच्छड़ हो जाता है। अब यह मच्छड़ बाहर निकलता है। मच्छड़ प्रायः अँधेरी जगहों में जहाँ धूप नहीं जाती, वहीं रहते हैं और दिन भर तो वहाँ सोते रहते हैं, रात को भोजन की तलाश में निकलते हैं। तभी वे मनुष्य को काटते हैं। इसी के काटने से बुख़ार आता है। जो लोग मसहरी में सोते हैं उन्हें मच्छड़ नहीं काट पाते। जिनको मसहरी में सोने का सुभीता न हो उन्हें बदन में सरसों का तेल लगा कर सोना चाहिये। मच्छड़ सरसों के तेल की तेज़ी से डरते हैं।

गाँवों में मच्छड़ों से बचने की सब से सरल तरकीब यह है कि मच्छड़ों को अधिक संख्या में पैदा ही न होने दिया जाय। इसके लिए आवश्यकता इस बात की है कि गाँव के अन्दर या

इधर उधर जो छोटे छोटे गड्ढे हों उन्हें पाटकर वहाँ की भूमि बराबर कर दी जाय। अथवा उन गड्ढों को पूर्ण रूप से तालाब का रूप दे दिया जाय, जहाँ पर बड़ी बड़ी मछलियाँ रह सकें। ये मछलियाँ इन मच्छड़ों को खा जाती हैं। यदि गड्ढे किसी कारण से पाटे न जा सकें; और उन्हें तालाब का भी रूप न दिया जा सके तो उनके किनारों पर मिट्टी का तेल छिड़कवा देना चाहिए। इससे मच्छड़ों के अण्डे मर जायँगे और मच्छड़ बढ़ नहीं सकेंगे।

मलेरिया से बचने के लिए नीचे लिखे उपायों का अवलम्बन करना चाहिये।

१. घर के अन्दर पानी के बर्तनों को बिलकुल ढक कर रखना चाहिये। इसके सिवा कहीं सीड़ न रखना चाहिये।

२. मलेरिया का आक्रमण होने पर कुनैन खानी चाहिये। आक्रमण न होने पर भी सप्ताह में एक बार कुनैन खा लेना ठीक होगा।

३. मकान को पूरे तौर पर साफ़ रखना चाहिए, जिससे कहीं आस-पास मच्छड़ जमा न हो सकें।

४. पानी उबाल कर पीना चाहिये।

५. प्रति दिन शाक, शरबत अथवा अन्य किसी न किसी प्रकार से नींबू का रस अवश्य लेना चाहिये।

हैज़ा

हैज़ा ऐसी भयंकर बीमारी है कि इससे मनुष्य बात की बात मृत्यु का ग्रास बन जाता है। किसी भी अन्य बीमारी से इतनी जल्दी मृत्यु नहीं होती, जितनी जल्दी इस बीमारी से होती है। प्रति वर्ष सहस्रों व्यक्तियों की मृत्यु केवल इसी के कारण होती है। इससे निरंतर बचते रहने की आवश्यकता है।

यह बीमारी खाने-पीने की अनियमितता से ही होती है। इसलिए इससे बचने के लिए खाने-पीने के सम्बन्ध में सदा सावधान रहने की आवश्यकता है। इसमें यकायक क़ै-दस्त होने लगते हैं और इतनी शीघ्रता और कष्ट से होते हैं कि मनुष्य एकदम शिथिल हो जाता है। क़ै-दस्त शुरू होते ही यदि तुरन्त उचित चिकित्सा न हुई, तो इससे बचना मुश्किल हो जाता है।

हैज़े के दस्त पतले और सफ़ेद होते हैं। हाथ-पैरों में दर्द और पेट में पीड़ा होती है। शरीर ठंडा और आँखें पीली पड़ने लगती हैं और पेशाब बन्द हो जाता है। यह रोग फैलता भी बहुत जल्दी और भयंकरता के साथ है। कभी कभी दो चार दिनों में ही महल्ले के महल्ले साफ़ हो जाते हैं। इसलिए हैज़े के रोगी के पास कम से कम मनुष्य आने देना चाहिये। नीचे लिखी बातों पर ध्यान रखने से इस रोग से रक्षा होती है।

१. जिन दिनों इस रोग का प्रकोप हो उन दिनों यथा संभव स्वल्पाहार करना चाहिये। कम से कम पूर्ण आहार तो उन दिनों करना ही न चाहिये। क्योंकि कभी कभी ऐसा भी होता है कि साधारण रूप से तुम्हारा जो नियमित आहार है, इन दिनों उतना भी करने से बदहज़मी होना संभव है। और बदहज़मी ही इस महामारी की जड़ है।

२. सदा ताज़ा भोजन करना चाहिये, भूलकर भी सड़ा, गला या बासी भोजन न करना चाहिये।

३. खाने-पीने के बर्तन हमेशा साफ़ रखना चाहिये।

४. घर में इतनी सफ़ाई रखनी चाहिये कि कहीं ज़रा सा भी कूड़ा न हो। कूड़े पर मक्खियाँ बैठती हैं और ये मक्खियाँ ही हैज़े के कीटाणु ले आती हैं।

हैज़े की चिकित्सा की कुछ विधियाँ ये हैं—

१. इसमें असली अर्ककपूर बड़ा हितकर होता है। इसकी कुछ बूँदें पानी में मिलाकर रोगी को पिला देनी चाहिये।

२. रोगी के शरीर को गर्म रखना चाहिये और उसे कपड़ा उढ़ाये रखना चाहिये।

३. रोगी की कमर को सेंकते रहना चाहिये, जिससे पेशाब उतरे।

४. रोगी के क़ै-दस्त को ज़मीन के अन्दर गड़वा देना चाहिये। क्योंकि उसी से इसके कीटाणु इधर-उधर फैलते हैं।

५. रोगी जो कपड़ा पहनता हो, उसे भी जला डालना चाहिये।

६. रोगी की सेवा में रहने वाले को गरम जल से स्नान करना चाहिये और गरम जल ही ठंढा कर के पीना चाहिये।

७. बाज़ार की मिठाई तथा पूड़ी वगैरह उन दिनों क़तई न खानी चाहिये।

चेचक

यह ऐसी भयानक बीमारी है कि इससे हज़ारों बच्चे और युवक प्रति वर्ष काल-कवलित होते हैं। जब यह बीमारी होने को होती है तब शरीर भर में सरदी लगती है, सिर में पीड़ा और पीठ की रीढ़ में दर्द होता है, मुँह और आँखें रक्त वर्ण हो जाती हैं, कभी कभी वमन भी होता है; ज्वर चढ़ आता और दूसरे या तीसरे दिन शरीर भर में लाल लाल छोटे-छोटे दाने निकल आते हैं, चौथे या पाँचवें दिन वे दाने बड़े हो जाते हैं और उनमें एक प्रकार का पानी आ जाता है। वह पानी फिर पीप का रूप धारण कर लेता है। फिर ये दाने फूट फूट कर सूखते हैं। कुछ दिनों में वे बिल्कुल सूख जाते हैं और उनकी पपड़ी गिर जाती है, तब कहीं मनुष्य अच्छा होता है।

चेचक कई प्रकार की होती है। एक प्रकार की चेचक में काले दाने पड़ते हैं। यह बड़ी भयानक होती है। इसी से मनुष्य को अत्यधिक हानि पहुँचती है। कितने मनुष्य इससे कुरूप तथा अंधे तक हो जाते हैं। बच्चों पर यह रोग बहुत जल्दी प्रभाव डालता है। इसके कीटाणु दाने फूटते वक्त पीप अथवा उसकी चेप से अधिक फैलते हैं। इसके सिवा फुंसियों की पपड़ी के द्वारा भी वे हवा में मिलकर वायु मंडल को दूषित कर देते हैं। इससे रोगी को सेवा करने वाले खास व्यक्तियों को छोड़ कर और किसी को उसके पास न जाना चाहिये।

इस रोग की सर्वोपरि औषधि टीका है। एक बार टीका लगवाने से फिर सात वर्ष तक इसका असर नहीं होता। बचपन में ही टीका लगवा देना चाहिये; और फिर किशोर अवस्था में भी एक बार अवश्य लगवाना चाहिये। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों पर अवश्य ध्यान रखना चाहिये।

१. जिन स्थानों में चेचक हो, वहाँ के लोगों पर विशेष ध्यान रखना चाहिये और जहाँ तक सम्भव हो, उन दिनों उनके स्पर्श से बचना चाहिये।

२. स्कूलों पर विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है। जिन घरों में चेचक हो उन घरों के बच्चों को स्कूल में आने से मना कर देना चाहिये। यदि ऐसे कई बच्चे स्कूल जा चुके हों तो स्कूल बन्द कर देना चाहिये।

३. रोगी को सब से अलग रखना चाहिये। उसका मल-मूत्र तथा जिन कपड़ों में उनका पसीना भिदता हो उनको भी, जला डालना चाहिये।

४. जब तक एक एक पपड़ी झड़ न जाय और रोगी अच्छी तरह स्नान न करने लगे, तब तक लोगों को उससे बिल्कुल अलग रहना चाहिये।

५. इस रोग से मृत व्यक्ति को फार्मलिन formlin 4% में भीगे हुये कपड़े से लपेट कर उसका दाह करना चाहिए। इसके बाद रोगी के कमरे की सफ़ाई कर डालनी चाहिये।

किसी अन्य चूहे के शरीर पर अपना निर्वाह करने को विवश होती है। जब वह दूसरे चूहे के सम को पीती है तब उसी पहले चूहे के कीटाणु उसके द्वारा उस दूसरे चूहे के सम में भी पहुँच जाते हैं। इसीलिए फिर उस चूहे की भी मृत्यु हो जाती है। इसी प्रकार अधिकाधिक संख्या में चूहे मरते रहते हैं और उसके कीटाणु उन स्थानों में फैलते रहते हैं। जब चूहे कम हो जाते हैं, या बिल्कुल नहीं रहते तब वे कुटकियाँ मनुष्य के शरीर पर कब्ज़ा कर लेती हैं। गिल्टी वाला (Pneumonic Plague) प्लेग इसी प्रकार फैलता है।

फेफड़े वाला प्लेग (Pneumonic Plague) साँस द्वारा फैलता है। ऐसी दशा में रोगी के निकट बैठना, उसे स्पर्श करना तथा उसके थूक का स्पर्श करना बड़ा हानिकर होता है।

प्लेग से बचने के कुछ उपाय ये हैं—

१. जहाँ तक सम्भव हो, प्लेग-ग्रस्त स्थान को तुरन्त छोड़ देना चाहिए।
२. जहाँ तक सम्भव हो, चूहों को भगा देना चाहिये।
३. खाने पीने की चीज़ों को खुला न छोड़ना चाहिये। कारण, चूहे उनमें अपना मुँह बिना डाले या उन्हें बिना सूँघे कभी न छोड़ेंगे और फिर प्लेग का विष उनमें फैल ही जायगा।
४. प्लेग के कीटाणु गरमी से जल्दी मरते हैं। यदि न भी मरें तो भी उनका असर कम हो जाता है। इसलिए घर के कोने में धूप पहुँचाने का प्रबन्ध करना चाहिये।

प्लेग

प्लेग भी एक भयंकर बीमारी है। इस बीमारी के कारण हमारे देश की जो अपरिमित हानि हुई है सो तो हुई ही है, साथ ही इस बीमारी के कारण संसार भर में भारत बदनाम भी काफ़ी हुआ है। इसका प्रभाव यहाँ तक पड़ा है कि भारत से विदेश जाने वाले यात्रियों तक को अनेक असुविधाओं का सामना करना पड़ता है।

यह बीमारी पहले पहल जहाँगीर बादशाह के ज़माने में अर्थात् सन् १६१२ ही में यहाँ हुई थी। तब से अब तक इसने इस देश को इतनी अधिक क्षति पहुँचाई है जितनी शायद ही अन्य किसी बीमारी ने पहुँचाई हो। यद्यपि अब इसका प्रभाव बहुत कुछ कम हो गया है, तथापि अब भी इससे प्रति वर्ष गाँव के गाँव उजड़ जाते हैं।

प्लेग के कीड़े ज़मीन में पैदा होते हैं। इसलिये यह पहले ज़मीन के भीतर रहने वाले चूहों पर अपना प्रभाव डालता है। जब घर में चूहे मरने लगें, तब समझ लेना चाहिये कि यह बीमारी आ पहुँची। प्लेग के कीटाणु का नाम है Bacillus pestis। यह शरीर में दो प्रकार से प्रवेश करता है—रक्त द्वारा और मांस द्वारा। जिस तरह मनुष्य के सर पर खटमल, मच्छड़ तथा जुएँ अपना निर्वाह करते हैं उसी प्रकार चूहे के शरीर पर 'कुटकी' नाम के कीट का निर्वाह होता है। जब किसी चूहे की मृत्यु प्लेग के द्वारा हो जाती है, तब उसका खून जम जाता है। यह जमा हुआ खून कुटकी से पिया नहीं जाता। तब वह

इनफ़्लुएँज़ा

प्लेग के समान यह भी एक प्रकार की भयानक महामारी है। आज से कोई दस वर्ष पहले जब यह पहली बार इस देश में आया था तब बड़े-बड़े शहरों में प्रति दिन सहस्रों पुरुषों की मृत्युएँ होती थीं। अब यद्यपि इसका प्रभाव कम हो गया है तथापि अब भी कभी-कभी कहीं न कहीं यह अपना प्रभाव दिखा ही देता है। यह विलायत से ही यहाँ आया है। इसे लोग युद्ध-ज्वर भी कहते हैं।

यह रोग ज़ुकाम बिगड़ जाने से होता है। पहले पहल इसमें और साधारण ज़ुकाम में कोई विशेष अन्तर दृष्टिगत नहीं होता, और यदि यह साधारण हुआ तो सात आठ घंटे में शांत भी होने लगता है; पर यदि कुछ ज़ोरदार हुआ तो छाती जकड़ जाती और नाक, कान सूज जाते हैं। रोगी को बड़ी जल्दी निर्बल कर देता है। बच्चों, बुड्ढों और निर्बल व्यक्तियों पर एकदम हावी हो जाता है। कमज़ोरी तो इतनी अधिक बढ़ा देता है कि रोगी इससे मुक्त हो जाने पर भी बहुत दिनों तक अत्यधिक अशक्त रहता है।

इसकी उत्पत्ति ज़ुकाम से ही होती है। इसलिए जब रोगी नाक साफ़ करता है तब इसके कीटाणु हाथ-पैर या कपड़ों पर आ जाते हैं। जब लोग रोगी को छूते हैं तब ये कीटाणु उस व्यक्ति के शरीर पर भी पहुँच जाते हैं! और उसे भी अपना शिकार बनाकर छोड़ते हैं। इसलिए इनफ़्लुएँज़ा के दिनों में घर

आने पर हाथ-पैर साबुन से साफ़ करके आग से एक बार सेंक लेना चाहिये।

रोगी के थूक से भी इसके कीटाणु बहुधा वायु-मंडल में मिल जाते हैं। इसलिये रोगी के थूकने और छिनकने की व्यवस्था इधर उधर कई जगह न करके एक मिट्टी के बर्तन में करनी चाहिये और उसे ज़मीन के अन्दर गड़वा देना चाहिये।

इस रोग का प्रकोप होने पर बहुधा जोड़ों और छाती में दर्द होता है। ऐसी दशा में छाती पर राई का प्लास्टर लगाने या तारपीन का तेल लगाकर सेंकने से छाती का दर्द दूर हो जाता है। सोंठ या तुलसी का काढ़ा भी बहुत फ़ायदा पहुँचाता है। साधारण दशा में तो यह साधारणतया अच्छा हो जाता है; पर कभी कभी जब बिगड़ जाता है तब बड़ा भयानक रूप धारण करता है। अतएव इसे साधारण न मान कर डाक्टर की सलाह से ही उचित चिकित्सा करानी चाहिये।

———

२१—कुछ साधारण रोग और उनके उपचार

(१) आँव (Dysentery) यह एक प्रकार के आँतों का रोग है। इसमें आँतों की दीवालों में छोटे छोटे अथवा बड़े-बड़े ज़ख्म हो जाते हैं। मल के साथ चिकना चिकना पदार्थ प्रायः रक्त मिश्रित गिरता है। बहुधा हल्का सा ज्वर भी रहता है, और पेट में मिरोड़ कर पीड़ा होती है। इसका साधारण अथवा घरेलू उपचार कोई नहीं है। किन्तु कई बातों का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है—

(i) जब आँव पड़ने लगे तो भोजन कुछ न करके केवल दूध, मट्ठा तथा साबूदाना खावे। जब आँव अधिक आने लगे तो बराबर लेटा रहे।

(ii) इस्पगोल (Ispaghulae) और कच्ची शक्कर मिलाकर तोला भर तीन बार खाये या बेल का शरबत या मुरब्बा खावे। हल्की आँव इसी से अच्छी हो सकती है। यदि न अच्छी होवे तो शीघ्र ही डक्टर की शरण ले।

(२) शिर का दर्द—बड़े शोक की बात है कि आज कल के विद्यार्थियों में यह शिकायत प्रायः अधिक पाई जाती है। यदि उनको दो तीन घंटे भी पढ़ना पड़े तो उनके शिर में पीड़ा पैदा हो जाती है। शिर की पीड़ा कोई रोग नहीं है किन्तु रोग का एक लक्षण है। विद्यार्थियों में प्रायः शिर दर्द के दो कारण होते हैं:—

(i) Constipation मल का अच्छे प्रकार साफ़ खुल कर न होना, इसका कारण यह है कि विद्यार्थियों में व्यायाम का अभाव होता जाता है इससे शरीर में निर्बलता आती है, अन्न ठीक प्रकार नहीं पचता और यह ख़ुद पैदा हो जाता है।

(ii) Error of refration—यदि आँख में किसी प्रकार का दोष है जैसे कि दूर का कम दिखाई देना अथवा पुस्तक पढ़ने में कष्ट होना, ऐसी अवस्था में यदि चश्मा (ऐनक) इत्यादि से ठीक इलाज न हुआ तो यह पीड़ा बढ़ती ही जाती है।

इसलिये विद्यार्थियों को व्यायाम करना परमावश्यक है। यदि यों भी पीड़ा न कम होवे तो शीघ्र ही किसी आँख के डाक्टर से आँख दिखला कर ठीक ठीक उपचार कराना चाहिये।

मैले कुचैले लड़कों के भी शिर में पीड़ा होती है इससे प्रत्येक विद्यार्थी को नित्य स्नान करना और स्वच्छ वस्त्र धारण करना चाहिये।

(३) आँख आना—(Simple conjunctivitis) ऐसी अवस्था में अध्ययन कदापि न करना चाहिये। गुलाब जल में फिटकिरी डाल कर एक शीशी में रख लेना चाहिये। १ तोला गुलाब जल में ६ रत्ती फिटकिरी इसी को दो बार आँख में छोड़ना चाहिये, यदि आँख में कीचड़ बहुत आवे तो दिन में दो तीन बार बोरिकलोशन (Acid Boric lo grains to one ounce of water) से धो डालना चाहिये।

रात्रि को सोते समय अफ़ीम और फिटकिरी बराबर बराबर पानी में घिस कर आँख के ऊपर लेप कर लेना चाहिए। इससे पीड़ा बहुत कम होती है।

यदि आँख में कोई किटकिनो अथवा कोई जन्तु चला जावे तो आँख को मलना नहीं चाहिए इससे उसके भीतर ज़ख़्म हो जाने का भय है। एक रूमाल के कोने को पानी में भिगो कर और पलक उलटा कर धीरे से आँख पोंछ देना चाहिये। ऐसा करने से बाहरी पदार्थ या कीट निकल जावेगा।

(४) कान का दर्द—यह पीड़ा बड़ी कष्टदायक होती है। मनुष्य इस पीड़ा से बेचैन हो जाता है। ऐसी अवस्था में कान का पिचकारी से धुलवाना उचित 'नहीं है। कान को ऊपर से सेंक लेना चाहिये और कान में एक या दो बूँद कड़ुवा तेल गरम करके डालना चाहिये। यदि इससे भी कम न होवे तो (Tincture opii) के दो तीन बूँद गरम करके डाले इससे पीड़ा अवश्य जाती रहेगी। यदि तब भी न जावे तो किसी डाक्टर की शरण लेना चाहिये।

यदि कान के भीतर कोई वस्तु जैसे चना, मटर इत्यादि या कोई जन्तु घुस जावे तो, यदि जन्तु का सन्देह हो, तो कान में ऊपर तक पानी या कोई तेल भर देना चाहिये। वह कीट या जन्तु स्वयं बाहर निकल आवेगा। यदि मटर इत्यादि कोई वस्तु चली गई हो तो पानी कुनकुना करवा कर अथवा कुनकुना (Boric lotion) से पिचकारी देने से वह पदार्थ या मरा हुआ कीट बाहर निकल आवेगा।

(५) यदि कान के अन्दर कोई पदार्थ चला गया हो तो पहिले छींकने की कोशिश करे। इससे बहुत सम्भव है कि

वह पदार्थ निकल जावे । यदि न निकले तो डाक्टर के पास जावे।

(६) पेट का दर्द—यह भी कई प्रकार का और कई कारणों से होता है जिसके बतलाने की यहाँ आवश्यकता नहीं है। यदि पेट का दर्द दस्त होने के कारण हो तो भोजन केवल दूध का करना चाहिये और १० बूँद हल्का गन्धक का तेजाब एक आधी छटाँक पानी में मिला कर तीन बार पी लेना चाहिये। (Chlorodyne) क्लोरोडाइन एक बड़ी प्रसिद्ध औषधि है उसको १० या १५ बूँद पानी में मिला कर पी लेना चाहिये। इससे पेट की पीड़ा व दस्त बन्द हो जावेंगे। यदि पीड़ा और किसी कारण से हो तो डाक्टर के पास जाना चाहिये।

(७) दाद—इसके लिये गोआ पाउडर (Goa Powder) या क्राइसोफेनिक एसिड (Acid Chrysophanic) से बढ़कर अच्छी औषधि कोई नहीं है। थोड़ा सा गोआ पाउडर कड़वे तेल या वेसलीन में मिला कर रात को लगा लेना चाहिये। और प्रातःकाल साफ कर डालना चाहिये। यह ज़रा भी नहीं लगती; परन्तु कपड़े में दाग अवश्य पड़ जाते हैं। दाद से बचने के लिये यह आवश्यक है कि मनुष्य कोई भीगा कपड़ा बदन पर न पहिने और स्नान के अनन्तर सदा देह भली प्रकार पोंछ डाले।

(८) जल जाना—मनुष्य कई प्रकार से जल सकता है। जब कोई मनुष्य अग्नि या गरम जल इत्यादि से जल जावे तो तुरन्त ही एक स्वच्छ वस्त्र को अलसी के तेल में मिलाये हुये चूने के जल में भिगो करके जले हुये स्थान में अच्छे प्रकार

लगा लेना चाहिये। कुछ लोगों का मत है कि पड़े हुये छाले न तोड़ना चाहिये, परन्तु मेरे मतानुसार छाले अवश्य तोड़ना चाहिये। क्योंकि यदि छाले न तोड़े जावेंगे तो औषधि का कोई असर न होगा। यदि जले हुये स्थान पर वस्त्र इत्यादि चिपक गया हो तो वहाँ पर से उनको न हटाना चाहिये बल्कि उसके आस-पास के वस्त्र फाड़ डालना चाहिये।

(१) अग्नि से (Burn)

(२) गरम जल इत्यादि से

(३) तेज़ाब (अम्ल)

(४) क्षार (Strong alkali)

यदि तेज़ाब से जला हो क्षार (सोडा Soda biscard or Soda carb) से जले हुये स्थान को धोना चाहिये और यदि क्षार से जला हो तो सिरका या गन्धक के तेज़ाब में पानी मिला कर धोना चाहिये।

(९) साधारण चोट—इस पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है, किन्तु इतना ही लिखना आवश्यक है कि साधारण चोट के लिये Tincture of Iodine रामबाण है जहाँ पर चोट लगी हो वहाँ पर यह औषधि तुरन्त ही लगा देना चाहिये। यदि चोट जोड़ों पर हो तो उस जोड़ से काम न लेना चाहिये और उसको आराम से रखना चाहिये।

(१०) विषैले वस्तुओं का डंका मारना व काटना :—

(अ) साँप—जहाँ पर सर्प काटे उसके ऊपर २ स्थान पर कस कर बाँध देना चाहिये जिसको (Ligature) कहते हैं।

इससे रक्त वहाँ पर कम पहुँचेगा और विष जल्दी न फैलेगा।

काटे जगह को साफ़ चाकू या अस्तुरे से चीर देना चाहिये जिससे खून बह जावे और उस चीरे हुये स्थान पर पोटास परमेनगनाट (Potassium Permaganate) को धीरे धीरे मलना चाहिये।

(ब) बिच्छू—इसका भी ऊपर की तरह उपचार करना चाहिये।

(स) बर्र इत्यादि—इनका विष हलका होता है। जहाँ पर डंक मारा है (Lig Ammonia Fortis या Tincture Iodine) लगा दो ठीक हो जावेगा।

———

आहतों की पहली सहायता

आहतों की पहली सहायता करने वाले को शान्त-चित्त और धैर्यवान् होना चाहिये। किसी हालत में भी उसको घबड़ाना न चाहिये। किसी चोट या बीमारी की चिकित्सा करने के पहले यह जान लेना आवश्यक है कि बात क्या है और मरीज़ को किस तरह आराम पहुँचेगा। मगर ऐसी हालतों में, जिनमें ख़ून बह रहा हो या किसी ने विष खा लिया हो, सहायता करने वाले को ज़रा भी देर नहीं करनी चाहिये। उचित उपायों को तुरन्त काम में लाना चाहिये।

अगर हो सके तो छोटी छोटी चोटों को छोड़ कर हर हालत में डाक्टर को बुलाओ। डाक्टर के आने तक योंही न बैठ कर मरीज़ को आराम पहुँचाने की चेष्टा करो। यदि वहाँ पर भीड़ हो तो उसे पीछे हटाये रखो और मरीज़ के तंग कपड़ों को ढीला कर दो। यदि मरीज़ का चेहरा पीला है तो उसको चित्त लिटा कर उसका पैर ज़रा ऊँचा कर देना चाहिये। यदि उसका चेहरा तमतमाया हुआ है तो किसी कपड़े या किसी मुलायम चीज़ को उसके सिरहाने रख दो जिससे उसका सिर पैरों से ऊँचा हो जाय।

यदि कपड़े उतारने की आवश्यकता हो तो उसे धीरे धीरे काट कर अलग कर लो। जूतों को भी चोट की हालत में सावधानी से उतारना चाहिये उनके तसमों को काट कर उन्हें उतार लेना अच्छा है।

तुम यह न समझो कि अब हम डाक्टर हो गये। पहली सहायता जानने और उसका प्रयोग करने से केवल तीन मतलब हैं:—(१) कष्ट को डाक्टर के आने तक बढ़ने से रोकना (२) अगर हो सके तो उसे कम कर देना और (३) आकस्मिक आपत्तियों में जितना जल्द हो सके उचित ध्यान देना।

सब से पहले, छोटे-मोटे कष्टों को दूर करने के उपाय जानना चाहिये। वे नीचे दिये जाते हैं:—

जलना या झुलसना—जले हुए भाग को हवा से बचाओ यह पहली ज़रूरी बात है। इसके लिये उजले काग़ज रुई या आटे से उस भाग को ढक दो। अगर छाले उठ आये हों तो उसको मत तोड़ो। एक साफ़ कपड़े का टुकड़ा, नारियल या जैतून के तेल में जो समय पर मिल सके, भिगोकर ज़ख्म पर रखदो। आधा चूने का पानी और आधा अलसी का तेल दोनों को मिलाकर जो पीला पीला मरहम सा बन जाता है जले हुए की अच्छी दवा है।

बहुत ज्यादा जल जाना बहुत आपत्तिजनक है और ऐसी अवस्था में डाक्टर को ज़रूर बुलवाना चाहिए।

फटजाना या घाव का होना—हर तरह के ज़ख्मों को साफ़ रखना चाहिये। उनको मैले हाथों से मत छूओ और उन पर भूल कर भी मैली या रंगीन पट्टी न बाँधो। ज़ख्म में गन्दगी या कीड़ों के पड़ जाने से ज़ख्म ज़हरीला हो जाता है। और तब उसके अच्छे होने में देर लगती है। ज़ख्म को धोने के लिये कारबोलिक लोशन या ख़ब उबाल कर ठंढा कर लेने के

बाद पानी या इस पानी में कुएँ में डालने वाली दवा 'परमैंगेनेट आफ़ पोटाश'' के चार पाँच कणों को घोलकर काम में लाओ। अगर यह न मिल सके तो ज़ख्म पर टिंक्चर आयोडिन का लेप करो। फिर उस पर बोरिक लिन्ट भिगो कर रखो और तब साफ़ पट्टी से बाँध दो। ज़ख्मों की चिकित्सा करने में नीचे दी हुई बातों पर ध्यान देना चाहिये :—

१. ख़ून के बहने को बन्द करना।

२. ज़ख्म को साफ़ करना।

३. यदि आवश्यकता हो तो जख्मी हिस्से को खपच्चियों और गलपट्टियों से आराम में रखना।

४. अगर बेहोशी इत्यादि हो तो उसको दूर करने का उपाय करना।

गला घुट जाना—सब से पहले गले में लपटी हुई किसी चीज़ को ढीला कर दो। गले में अटकी हुई चीज़ को उँगली, चम्मच के दस्ते या और ऐसी चीज़ से बाहर निकालने की कोशिश करो। अगर ऐसा करने में कै हो जावे तो और भी अच्छा है। अगर ऐसा न हो सके तो सर को आगे की ओर झुका कर दोनों कन्धों के बीच पीठ कर धमक्के लगाओ। इससे अटकी हुई चीज़ अपनी जगह से हटकर शीघ्र ही बाहर निकल पड़ेगी। अगर छोटी छोटी चीज़ें, जैसे बटन या मोती निगले गये हों तो रेंड़ी का तेल पिला देना चाहिये। अगर वह चीज हवा की नली में आ पड़ी है तो डाक्टर को बुला भेजो और मरीज को उलटाये रखो जिससे धाँसा आने से वह चीज बाहर निकल पड़े।

आँख में किसी चीज़ का पड़ जाना—जिस आँख में कोई चीज़ पड़ी हुई है उसको मत मलो दूसरी आँख को मलो। जिस आँख में कुछ पड़ गया हो उसे बन्द कर लो। जिससे उसमें आँसू जमा हो जाय। तब उसे खोल दो, इस तरह आँसू के साथ पड़ी हुई चीज़ भी बहकर निकल जायगी। यदि ऐसा करने से चीज़ नहीं निकलती तो पूछो कि नीचे के पलक में कष्ट है तो मरीज़ से कहो कि वह ऊपर को ताके और तुम पलक के नीचे अँगूठा रखकर पलक के नीचे की तरफ खींचो और एक साफ रूमाल या कपड़े का किनारा पानी में भिगोकर तकलीफ़ देने वाली चीज़ को निकाल डालो। ऊपर के पलक की तकलीफ़ को दूर करने के लिये मरीज़ को एक कुरसी पर बिठाओ और उसका सर पीछे की तरफ़ झुका दो। उसके पीछे खड़े होकर दियासलाई या इसी तरह की गोली सलाई पलक पर रखकर उसको बालों के पकड़ कर ऊपर की तरफ़ सलाई पर लौट दो। इस तरह पलक जेब की तरह उलट जावेगी और तब तुम पड़ी हुई चीज़ को पहिले बताये उपाय से निकाल सकते हो। इसके बाद एक या दो बूँद रेंड़ी का तेल आँख में डालने से बड़ा आराम मिलता है।

अगर कोई धारदार चीज़ आँख में पड़ जाय तो डाक्टर को बुला भेजना चाहिये और उसके आने तक एक या दो बूँद रेंड़ी का तेल आँख में डाल देना चाहिये।

नाक या कान में किसी चीज़ का घुस जाना—डाक्टर से सलाह लेना अच्छा है यदि कान में कोई कीड़ा घुस गया है तो रोशनी के पास कान को ले जाओ, वह निकल आवेगा कभी कभी तेल देने से भी लाभ होता है।

कान का दर्द—इसमें सेंकने से आराम मिलता है। गर्म कपड़े से या गर्म पानी की बोतल से कान को सेंको। मीठे तेल को गर्म कर के दो-चार बून्द कान में डाल कर रुई लगा दो। तेल इतना गरम न हो कि कान जल जाय।

दाँत का दर्द—यह दर्द दाँतों की खराबी से होता है। जहाँ पर दर्द हो रहा है अगर वहाँ पर दाँतों के बीच कोई रन्ध्र मालूम होता हो तो उसे रुई की फुरेरी से साफ़ कर दो और तब ज़रा सी रुई को लौंग के तेल में भिगो कर उसके अन्दर भर दो। अगर कोई रन्ध्र न मिले तो ज़रा सी रुई को कपूर के अर्क में भिगो कर मसूड़े के बाहर की तरफ़ लगा दो। कान के दर्द की तरह इस दर्द में भी सेंकने से लाभ होता है।

पेट में ऐंठन—यह दर्द अनपच के कारण हो जाया करता है। पेट को सेंकने से अथवा मलने से प्रायः आराम मिलता है। थोड़ा सा पेपरमेंट गर्म पानी में डाल कर या अदरक या सोंठ की गर्म गर्म चाय पीने से बड़ा फायदा होता है। क़ै करना भी कभी कभी लाभदायक होता है। जो कुछ भी हो, डाक्टर से सलाह लेना अच्छा है।

विष खाना—रोगी के चेहरे को देखो। पता लगाओ कि होठों पर धब्बे हैं या नहीं, मुँह से किसी तरह की गन्ध आ रही है, रोगी बकता है या चुपचाप पड़ा है, रोगी का चेहरा तमतमाया हुआ है या और किसी तरह का है, रोगी की आँखें अन्दर घुसी हुई हैं या मामूली हालत में हैं, आँख की पुतली छोटी हैं या बड़ी, उसके कपड़ों पर किसी तरह के दाग़ तो

नहीं है, रोगी सोना चाहता है या नहीं। इन तमाम बातों को अच्छी तरह जान कर डाक्टर को खबर भेजो। तब तक तुम नीचे दिये उपाय कर सकते हो।

अगर होठों पर दाग़ नहीं है तो मरीज़ को क़ै कराने की कोशिश करो, उसकी हलक़ में पर डालो, नमक मिला हुआ गुनगुना पानी पीने को दो, या राई और गर्म पानी पिलाओ। पहिले उसे कुछ दूध पिला दो जिससे ज़हर इकट्ठा हो जावे। लेकिन अगर होठों पर दाग़ है तो क़ै मत कराओ क्योंकि इससे उसकी तकलीफ़ और ज्यादा बढ़ जावेगी और यदि जलाने वाली चीज़ बाहर निकलेगी तो वह कंठ को भी जला देगी। इस हालत में रोगी को अंडे की सफ़ेदी या आटा खिलाओ।

अफ़ीम जैसे नींद लाने वाले ज़हरों में रोगी को क़ै कराओ और तब उसे गाढ़ी गाढ़ी चाय या काफ़ी पिलाओ। रोगी को सोने मत दो, उसको इधर उधर टहलाओ या उसके मुँह पर पानी के छींटे दो। किसी तरह उसे जगाये रखो।

भिड़ या मधुमक्खी का डंक मारना—चाबी से दबा कर डंक को निकाल दो इसके बाद अमोनिया या सोडा मल दो। परमैंगेनेट आफ़ पोटाश मल दो नहीं तो भीगा हुआ नमक और भीगी हुई मिट्टी का लेप कर दो।

मूर्छा का आ जाना—गर्दन और कमर के ऊपर वाले कपड़ों को ढीला कर दो, भीड़ को हटा दो। और अगर मकान के अन्दर हो तो खिड़की खोल दो जिससे रोगी को ख़ूब हवा मिल सके। चेहरे, हाथों और सीने को ठंडे पानी

से धो दो, अमोनिया सुँघाओ और पैरों को अन्दर की तरफ़ को मलो। जब रोगी घूँट सके तब गर्मी पहुँचाने वाली नशीली चीज़ें देना चाहिये पर यह उसी हालत में करना चाहिये जब पूरा विश्वास हो जावे कि शरीर के किसी भीतरी अंग से ख़ून नहीं निकल रहा है।

लू लग जाना—सर, गरदन और सीने को पानी से ठंडा रक्खो जब तक कि रोगी को चेतनता न आ जाय। इसके बाद रोगी को गर्म कम्बलों में लपेट किसी अँधेरी जगह में रक्खो और उस पर पूरा ध्यान रक्खो जब तक वह निरापद न हो जा। लू में कच्चे आम भून कर उसका नमकीन पना भी लाभदायक होता है। भुने हुये आम के गूदे का शरीर पर लेप भी किया करते हैं।

(१) रोगी के बैठाने या लेटाने की हालत—जिस भाग से ख़ून निकलता हो उसे ऊँचा रखना चाहिये क्योंकि ख़ून ऊपर को कठिनता से चढ़ता है।

(२) ठंड—ठंडक से कटी हुई नालियों के सिरे सुकड़ जाते हैं और ख़ून का बहना रुक जाता है, इसलिये बरफ़ या बरफ़ के पानी से भीगे हुए कपड़े को चोट पर रखने से ख़ून का बहना रुक जाता है।

(३) दबाव—उँगलियों से, गद्दियों से, पट्टियों से या दूसरी चीज़ों से, जैसे टूर्नीकेट से, पहुँचाया जाता है।

दबाव डालने की चार विधियाँ हैं:—

(अ) उँगली और अंगूठे से।

(ब) गद्दी और पट्टी से।

(ख) जोड़ों को ज़ोर से मोड़ने से।

(ङ) टूर्नीकेट से।

दबाव डालने के सब विधियों में उँगली और अँगूठे का दबाव सबसे बढ़िया है। उँगली या अँगूठे को आहत रग के मुँह पर दबाओ। ख़ून बन्द हो जायगा।
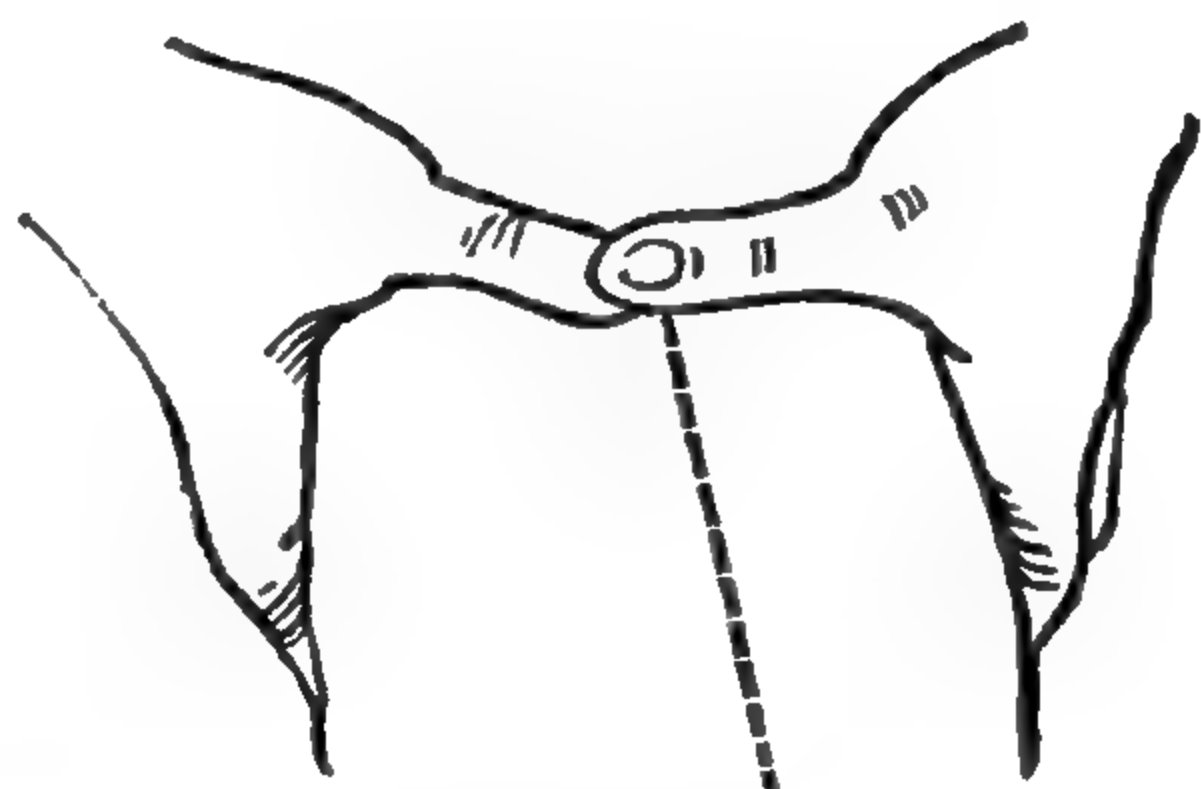
अगर घाव के ऊपर ही दबाव डालना असम्भव हो तो जिस नली से ख़ून बह रहा हो उसको एक हड्डी के ऊपर दबाओ। जब अच्छे ख़ून की नाली कट जाती है तब घाव से ऊपर हृदय की ओर दबाव डाला जाता है और जब बुरे ख़ून की नाली कट जाती है तो घाव की दूसरी ओर।

गद्दी और पट्टी :—गद्दियाँ, रूमालों को, नेकरचिफों को या पगड़ी के टुकड़ों को कड़ा लपेटने से तैयार हो सकती हैं। पत्थर, काग, सिक्के या लकड़ी के टुकड़े लपेटने से गद्दी बहुत मज़बूत बन सकती है। गद्दी को पट्टी से इस तरह से स्थिर करना चाहिये कि ख़ून के बहने की जगह पर ख़ूब दबाव पड़े।

गद्दी और जोड़ों को ज़ोर से मोड़ना :—ख़ून बन्द करने का यह बहुत अच्छा ढंग है। इस ढंग से रग झुककर पट्ठों से दब जाती है और ख़ून नहीं निकल सकता।
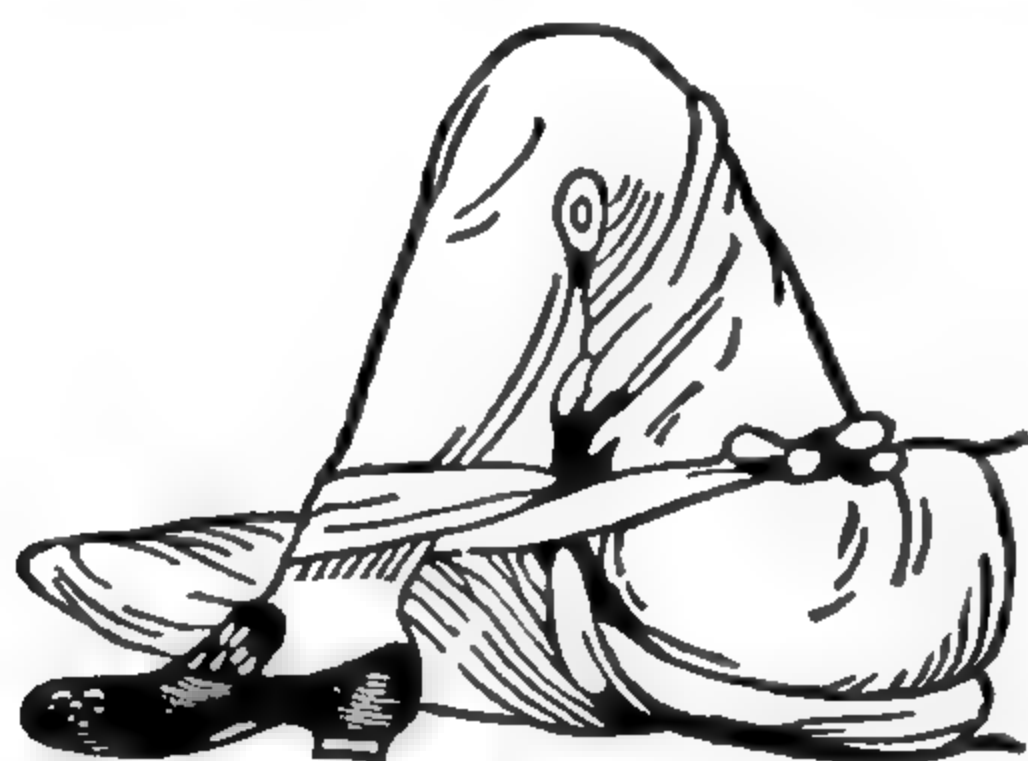
टूर्नीक्रेट :—एक पत्थर या लकड़ी के कड़े टुकड़े को एक कपड़े में लपेटो और उसको ख़ून की नली के ऊपर रक्खो और तब चोटिले हिस्से के चारों तरफ़ एक रूमाल की तिकोनी पट्टी को ढीली ढीली बाँध दो। इस ढीली पट्टी के भीतर एक पेन्सिल या लकड़ी के टुकड़े को डाल कर ऐंठ दो। लकड़ी या

पेन्सिल को ऐंठी हुई हालत में रखने के लिए एक और पट्टी से उसे मज़बूत कर दो।

आपने अक्सर आदमियों के पैरों में घूमी हुई गाँठदार नसें देखी होंगी; इनको अँग्रेज़ी में वेरीकोस वेन्स (Vari-

cose veinse) कहते हैं। जब ऐसी नसों से .खून निकलता है तो ज़ख्म के ऊपर नीचे दोनों तरफ दबाव डालने की ज़रूरत पड़ती है। .खून रुक जाने के बाद जैसी घाव की चिकित्सा ऊपर बतलायी जा चुकी है वैसी ही करनी चाहिये।

ऊपर कही हुई बातें शरीर के बाहर की तरफ़ .खून के बहाव से सम्बन्ध रखती हैं। लेकिन अगर .खून का बहाव अन्दर की तरफ़ पेट में हो रहा हो तो उसकी चिकित्सा करने के लिए डाक्टर को बुलवा भेजो, रोगी को बिलकुल चुपचाप लिटाये रक्खो, शरीर पर से तंग पहिनी हुई चीज़ को ढीला कर दो, बरफ़ के छोटे छोटे टुकड़े चूसने को दो, और नशे की कोई चीज़ भूल कर भी मत दो।

नाक से .खून का बहना :—रोगी को खुली हवा में या खुली खिड़की के पास बिठाओ और उसके सर को ज़रा सा पीछे की तरफ़ झुका दो, बर्फ़ के टुकड़े या ठंडे पानी की गद्दी नाक पर और गर्दन के पीछे की तरफ़ लगाओ, पैरों को गरम पानी में रख दो। अगर .खून का बहना न रुके तो रुई के फ़ाये को नथने के अन्दर भर दो और उसको वहीं रहने दो जब तक .खून का बहना रुक न जावे।

हड्डी का टूटना, उसका बाँधना और काम निकालू खपच्चियाँ—जब किसी भाग की हड्डी टूट जाती है तो वह हिस्सा लम्बाई में घट जाता है और उसकी इधर-उधर की शक्ति जाती रहती है।

अगर यह समझ में न आवे कि हड्डी टूटी है या नहीं तो उसकी चिकित्सा टूटी हुई हड्डी की तरह करने में कोई हानि नहीं है। उसमें खपच्ची इत्यादि बाँध सकते हैं।

टूटी हुई हड्डी के दो प्रकार हैं। सादी (Simple) और दुहरी (Compound)। सादी वह है जिसमें हड्डी टूट कर खाल और मांस के अन्दर रह जावे और दुहरी वह है जिसमें हड्डी टूट कर मांस और खाल के ऊपर निकल आवे। अगर हड्डी टूट कर बाहर न भी निकले मगर मांस और खाल इस तरह फट जाय कि टूटी हुई जगह तक बाहिरी हवा पहुँच जाय तो यह चोट दोहरी समझी जायगी।

टूटी हुई हड्डी को चिकित्सा करने में पहिली बात यह है कि खून का बहना रोक दिया जाय और तब घाव की मरहम-पट्टी की जावे। इसके बाद सादी तरह पर टूटी हुई हड्डी की चिकित्सा करनी चाहिये।

पहिली सहायता का सिद्धांत यह है कि चोट-चपेट को अधिक बढ़ने से रोकना चाहिये। इसीलिये सादी चोट पर भी पूरा-पूरा ध्यान देना चाहिये क्योंकि थोड़ी भी असावधानी से सादी चोट भी कठिन बन जाती है। अगर हो सके तो रोगी को जहाँ पर चोट लगी है उस जगह से न हटाना चाहिये जब तक कि रोगी को खपच्चियाँ लगाकर सुरक्षित न कर लिया जाय।

काम निकालू खपच्चियाँ, अखबारों को मजबूती के साथ लपेटने से, लकड़ी के सीधे टुकड़ों से, स्काउट के डंडे या झंडियों की लकड़ियों से, पेड़ की सीधी सीधी डाल काट लेने से बन सकती हैं।

एक खपची टूटे हुए अंग के ऊपर रखनी चाहिये और दूसरी नीचे। खपचियों को इस्तेमाल करने से पहले उनके उस तरफ, जो अंग से मिला रहे, किसी मुलायम चीज़ लपेटी हुई पट्टियाँ, रुई, नेकरचीफ, साफा आदि की गद्दियाँ लगा देना चाहिये।

पहिली सहायता के काम में तिकोनी पट्टियाँ अधिक उपयोगी होती हैं। वे चौड़ी, तंग और खुली हुई जिस तरह चाहो इस्तेमाल हो सकती हैं। पट्टियों का काम निकालने के लिए साफा, धोती, रुमाल इत्यादि काम में लाये जा सकते हैं।

पहिली सहायता में पट्टियों के सिरे बाँधने में 'रीफ़' गाँठ
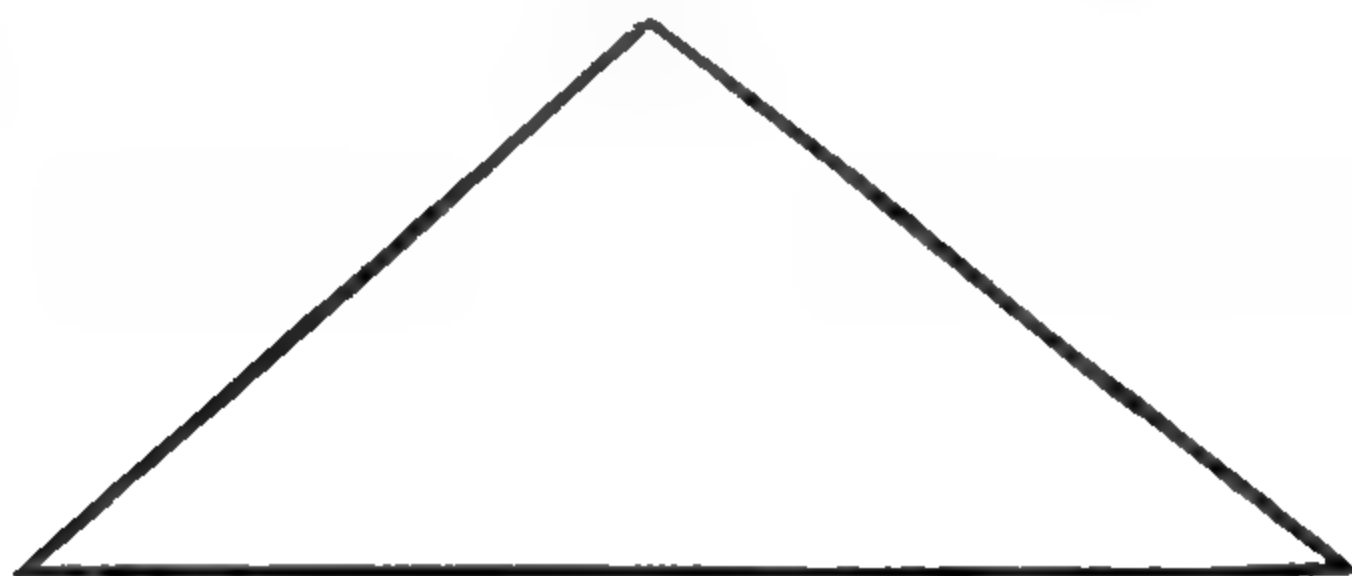
काम में लायी जाती है। प्रायः पट्टी छोटी पड़ जाने पर सेफ़्टीपिन इस्तेमाल करते हैं, लेकिन इसके लगाने में सावधानी न की गई तो वह रोगी के मांस में चुभ जाती है।

बड़ी गलपट्टी बाँधने के लिये रोगी को अपने सामने रक्खो, पट्टी की नोक को अपने एक हाथ में लो और दूसरे हाथ में उसका एक सिरा पकड़ो, पट्टी को छाती पर इस तरह रक्खो कि नोक छाती और आहत बाजू की तरफ की कोहनी के बीच में हो, एक सिरा तंदुरुस्त कन्धे पर ले जाओ, कोहनी को

मोड़ दो और जख्मी तरफ़ की कलाई और हाथ को पट्टी पर इस तरह रक्खो कि हथेली कोहनी से ज़रा ऊँची रहे, बाद को पट्टी के नीचे के सिरे को ऊपर की तरफ़ लाकर ऊपर के सिरे से बाँध दो, नोक को कोहनी पर मोड़ कर सेफ़्टीपिन लगा दो।

हँसली की हड्डी का टूटना—घोड़े पर से या बाइसिकिल पर से गिरने में या हाकी, फुटबाल में गिर जाने से जब कोई आदमी अपनी हथेलियों के बल आ पड़ता है तो हँसुली की हड्डी टूट जाती है।

हँसुली की हड्डी पर सूजन आ जाती है और रोगी दर्द की शिकायत किया करता है।

चिकित्सा—गर्दन पर यदि नेकटाई इत्यादि हो तो उसे उतार दो और कमीज़ के बटन खोल दो, अगर कोट पहिने हो तो उसे धीरे से उतार दो, एक पट्टी या रूमाल को मज़बूती से लपेट कर गद्दी बना लो और उसको चोट खाई हुई बग़ल में दबा दो, कोहनी को झुका कर बाजू को छाती पर ले आओ, और लटके हुये कंधे को धीरे धीरे उठाकर अच्छे कंधे की सीध में ले आओ और ध्यान रक्खो कि हथेली सीने की तरफ रहे और अँगूठा ठोढ़ी की तरफ। इसके बाद सामने दी हुई तसवीर की तरह एक दूसरी पट्टी से बाजू को मज़बूती से बाँध दो।

इस चोट में गलपट्टी कभी नहीं लगाना चाहिये, बाजू को बेकार हिलाना डुलाना नहीं चाहिये और न असावधानी से जल्दी ही करना चाहिये।

बाज़ू की हड्डी का टूटना—कोहनी को झुकाकर बाज़ू को छाती पर लाकर समकोण बनाओ, जो चीज़ मिल सके

उसकी चार खपच्चियाँ बना कर एक एक बाजू के भीतर बाहर, सामने और पीछे की तरफ लगाओ, यह खपच्चियाँ कोहनी से कन्धे तक लम्बी होनी चाहिये सिवाय सामने वाली खपच्ची के जो कोहनी के झुकाव से ज़रा ऊपर रहना चाहिये। अगर दो ही खपच्चियाँ मिल सकें तो एक को नीचे और दूसरी को ऊपर की तरफ़ लगाओ, क्योंकि इन दोनों जगहों को सहारा देना बहुत ज़रूरी है, खपच्चियों को अपनी जगह पर क़ायम रखने के लिए दो पट्टियाँ एक चोट के ऊपर और दूसरी नीचे बाँधो, पहिले ऊपर की पट्टी को बाँध लेना चाहिये, तब छोटी गलपट्टी लगा दो। ध्यान रहे कि बाज़ू में झटका न लगे नहीं तो चोट की दशा और भी बुरी हो सकती है।

अगले बाज़ू की हड्डी टूटना—कोहनी को समकोण बनाओ और हाथ को छाती पर इस तरह रक्खो कि हथेली अन्दर की तरफ़ और अँगूठा ऊपर की तरफ़ रहे, किसी आदमी से कहो कि हाथ को इसी हालत में पकड़े रहे। दो खपच्चियाँ लगाओ जिनके नीचे गद्दी ज़रूर रहे, यह खपच्चियाँ अगर मुमकिन हो तो कलाई से कुछ ज्यादा चौड़ी हों। एक खपच्ची कोहनी के भीतर की तरफ़ से उँगलियों के सिरे तक और दूसरी कोहनी के बाहर से हाथ के ऊपर तक लम्बी होनी चाहिये, एक पतली पट्टी पहिले ऊपर के सिरे पर, फिर नीचे के सिरे पर और आख़िर में फ्रेकूचर के दोनों तरफ़ लगा कर खपच्चियों को बाँध दो, और तब बड़ी गलपट्टी लगा दो।

जबड़े की हड्डी का टूटना—इस तरह की चोट आने से दाँतों की पंक्ति बिगड़ जाती है, मुँह एक तरफ़ को लटक जाता है और मसूड़ों से ख़ून बहने लगता है।

चिकित्सा—ठुड्डी में हथेली लगा कर नीचे के जबड़े को ऊपर के जबड़े के साथ दबा दो, एक तंग पट्टी को बीच ठुड्डी के नीचे रखकर उसके सिरे को सर पर से ठीक कान के सामने और नीचे लाओ, और लम्बे सिरे को ठुड्डी के सामने लाकर दूसरे सिरे से बाँध दो।

डूबने वाले आदमी पर बनावटी सांस—रोगी को पानी से निकलते ही बनावटी साँस देना शुरू करना चाहिये। कपड़े उतारने या ढीले करने में समय नहीं खोना चाहिये। बनावटी साँस देने का काम दो तीन घण्टे तक जारी रखना चाहिये जब तक कि डाक्टर न कह दे कि अब जान नहीं है। रोगी में गरमाहट और ख़ून का दौरान बढ़ाना उस समय तक स्थगित रखना चाहिये जब तक कि उसमें असली साँस आती देख न पड़ने लगे। बनावटी साँस देने का काम शुरू करने के साथ ही किसी डाक्टर को बुलवा भेजो, और सूखे कपड़े, गरम पानी की बोतलें मँगवाने का प्रबन्ध कर लो।

चिकित्सा—पानी से निकलते ही रोगी को पट लिटा दो, उसकी बाजुओं को फैला दो और चेहरे को एक तरफ़ झुका दो। उसके मुँह और नाक को साफ़ करके उसके एक तरफ़ या अपनी टाँगों के इधर उधर रख कर घुटनों के बल बैठ जाओ।

रोगी के पीठ के नीचे वाले हिस्से पर हथेलियाँ रक्खो, तब आगे की तरफ झुको और धीरे धीरे ठीक नीचे की तरफ मज़बूती से छाती के पिछले और नीचे वाले हिस्से पर दबाव डालो, इससे हवा बाहर निकलती है। उसके बाद अपना बदन पीछे की तरफ़ झुकाओ और दबाव कम कर दो, लेकिन हाथों को मत हटाओ इससे हवा अन्दर आती है। बाहर को साँस

निकालने और अन्दर की तरफ लाने की इस विधि को १२ से १५ बार प्रति मिनट करना चाहिये, अगर इस दबाव से शीघ्र पानी नहीं निकलता है तो मुँह को साफ़ करो और उंगलियों से पकड़ कर जीभ बाहर खींच लो, लेकिन ऐसा करते समय ख़याल रक्खो कि दाँती बिलकुल खुली रहे क्योंकि आदमी अपने दाँतों से बड़ी बुरी तरह काटता है।

जब असली साँस अच्छी तरह चलने लगे तब ऊपर दी हुई विधि को रोक दो। रोगी को ध्यान पूर्वक देखो, अगर साँस धीमी पड़ने लगे तो फिर पहिले की तरह बनावटी साँस देने की क्रिया शुरू कर दो।

जब साँस चलने लगे तो रोगी को एक करवट लिटा दो और उसमें गरमी और ख़ून के दौरान के बढ़ाने की विधि शुरू करो।

जान आ जाने पर जब रोगी को घूँटने की शक्ति पूरी तरह आ जावे तब उसको थोड़ा सा दूध पिलाना चाहिये। लेकिन रोगी को विस्तरे पर ही रहने देना चाहिये और उसको सुलाने की कोशिश करनी चाहिये।

आयु और आश्रम

यदि हम भारतवर्ष के प्राचीन साहित्य तथा सभ्यता का अध्ययन करें तो हमें मालूम होगा कि हमारे पूर्वज दीर्घायु तथा इच्छानुसार मरने वाले हुआ करते थे। वे बाल अथवा युवा-अवस्था में ही काल के ग्रास नहीं बनते थे। उन्होंने अपने बल, बुद्धि, परिश्रम और अनुभव से जीवन वृद्धि का आदर्श मार्ग ढूँढ निकाला था जिसका अनुसरण वे नियमानुसार करते थे। सर्व साधारण मनुष्य की जीवन यात्रा सौ वर्ष पर्यन्त हुआ करती थी। "शतायुर्वै: पुरुष" यह वेद भगवान का वचन है।

परन्तु समय की गति निराली है। भारत वसुन्धरा की सन्तान अब अल्पायु हो गई है। उसमें बल नहीं है; बलहीन होने के कारण वह निरुद्योगी और निर्धन हैं। निर्धनता ही सब दुखों की जननी है। हमारी इस शोचनीय स्थिति का मुख्य कारण यह है कि हम अपने प्राचीन संस्कृति को भूल गये हैं और फल स्वरूप हमें सर्वत्र अवनति ही दिखाई दे रही है। ऐसे समय में हमें कविवर कालिदास के इन वचनों की सुध आती है :—

कस्यैकान्तं सुखमुपगतो दुःखमेकान्ततोवा।
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥

कोई भी प्राणी सदैव सुखी अथवा सदैव दुखी नहीं रहता। घूमते हुए चक्र की भाँति उसकी दशा में परिवर्तन होता रहता है। यह सिद्धान्त प्रत्येक व्यक्ति तथा प्रत्येक राष्ट्र के लिये लागू है। उद्योग और उत्साह से हमारे दिन फिर सकते हैं। यदि हम

सौ वर्ष जीवित रहना चाहते हैं तो हमें उचित मार्ग का अनुसरण करना चाहिये। आर्यऋषि महर्षियों ने अविश्रान्त परिश्रम और स्वानुभव से मृत्यु-लोक के प्रवासियों के लिये आश्रम-व्यवस्था की है। मनुष्य-स्वभाव और प्रकृति के नियमों के अनुसार आश्रमों की रचना की गई है। ये आश्रम क्रमानुसार इस प्रकार हैं:—ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। प्रत्येक आश्रम के नियम हैं और नियमों का पालन करना ही धर्म कहा गया है। प्रत्येक आश्रम में मनुष्य को २५ वर्ष निवास करना चाहिये। आश्रम-धर्म आयु-वृद्धि और आत्मोन्नति का सर्वोत्तम मार्ग है।

ब्रह्मचर्याश्रम

इस आश्रम में रहने वाला मनुष्य ब्रह्मचारी कहलाता है। ब्रह्मचर्याश्रम का मुख्य उद्देश्य ज्ञानार्जन तथा विद्याभ्यास है। मानव-जीवन की सफलता का विद्या एक प्रधान अंग है। विद्या के बिना कोई भी प्राणी शोभा नहीं पाता। प्रत्येक देश और प्रत्येक काल में विद्या का बड़ा मान होता है। किसी देश की सभ्यता का पता उस देश के साहित्य से लगता है। विद्या ही राष्ट्रोन्नति का एक प्रबल साधन है। प्रत्येक प्राणी को विद्याभ्यास करना चाहिये और इसीलिये इस आश्रम की रचना की गई है।

संसार में नाना प्रकार के शास्त्र और कलायें हैं। समय की गति तथा देश की आवश्यकतानुसार उपयुक्त विद्या तथा कला-कौशल का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। जहाँ तक हो सके विद्यार्थी को उसी शास्त्र का अध्ययन करना चाहिये जिसमें स्वाभाविक रुचि हो।

विद्याभ्यास के साथ शारीरिक बल बढ़ाना भी विद्यार्थी का आवश्यक कर्तव्य है। 'शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्' कालीदास का यह वचन बिलकुल सत्य है। जीवन संग्राम में वही मनुष्य अधिक समय तक जीवित रह सकता है जिसके शरीर में शक्ति है। शरीर में बल बढ़ाने के लिये प्रति दिन प्रातः और सायंकाल व्यायाम तथा शुद्ध अन्न, स्वच्छ जल और निर्दोष वायु का सेवन करना अत्यन्त आवश्यक है। ब्रह्मचारी को जितेन्द्रिय होना चाहिये। जितेन्द्रियता ही उसका मुख्य तप है और बल और बुद्धि के विकास का सर्वोत्कृष्ट साधन है। तात्पर्य यह कि ब्रह्मचारी को आरोग्य शास्त्र का अध्ययन और उसके अनुसार आचरण करना चाहिये।

शारीरिक और मानसिक उन्नति के साथ ब्रह्मचारी को चरित्र संगठन के नियमों का पालन करना चाहिये। विद्याभ्यास का अर्थ केवल लिखना पढ़ना ही नहीं है किन्तु आत्मोन्नति और शुद्ध आचरण की शिक्षा प्राप्त करना भी है। साहित्य के साथ उसे धर्म का भी पाठ पढ़ाना चाहिये। सत्य और प्रिय भाषण, धर्म पालन, गुरु भक्ति, इंद्रिय निग्रह और सत्संग आदि उत्तम गुणों से ब्रह्मचारी को विभूषित होना चाहिये। वही आदर्श ब्रह्मचारी है जो इन नियमों का पालन मनसा, वाचा, कर्मणा से करता है। ब्रह्मचर्याश्रम सब आश्रमों में प्रथम आश्रम है और इसीलिये भविष्य जीवन की सफलता इसी पर निर्भर है।

गृहस्थाश्रम

यह आश्रम मनुष्य जीवन का दूसरा विश्रान्ति स्थान है। इसका कार्य क्षेत्र विस्तृत है। जिस विद्या और कला का अध्ययन मनुष्य ब्रह्मचर्याश्रम में करता है उसका प्रत्यक्ष

अनुभव उसे इस आश्रम में करना होता है। पूर्ण यौवनावस्था में मनुष्य इस आश्रम में प्रवेश करता है। प्रवेश करते ही उसका विवाह होता है और उसी समय से उसका उत्तर-दायित्व बढ़ जाता है। संसार रूपी नाटक का यह आश्रम एक प्रधान अंग है। इसमें माया के अद्भुत दृश्य हमें आकर्षित करते हैं। मद, मोह, क्रोधादि के तीक्ष्ण बाण तथा कुसुमा-युध के कोमल बाण शरीर को बेचैन कर डालते हैं। वही मनुष्य आदर्श गृहस्थाश्रमी है जो इन पर विजय प्राप्त करता हुआ सन्मार्ग से विमुख नहीं होता।

गृहस्थाश्रम के सफलता की कुञ्जी सात्विक प्रेम है। पिता-माता, पुत्र-पुत्री, भाई-बहन, पति-पत्नी तथा संबन्धियों और इष्ट-मित्रों में यदि परस्पर प्रेम है तो वह गृहस्थाश्रम स्वर्ग तुल्य है। एक कवि ने कहा है:—

"सन्मित्रं सधनं स्वयोषिति रतिश्चाज्ञापराः सेवकाः
सानंदं सदनं सुताश्च सुधियः कान्ता मनोहारिणी
आतिथ्यं शिवपूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्नपानं गृहे
साधोः संगमुपासते हि सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः"

गृहस्थाश्रम में मनुष्य व्यवहारिक ज्ञान की शिक्षा प्राप्त करता है। बड़ों का मान किस प्रकार रखना चाहिये, समवयस्क मित्रों के साथ किस प्रकार बर्ताव करना चाहिये, बच्चों का पालन किस प्रकार करना चाहिये, अतिथियों का सत्कार किस प्रकार करना चाहिये, स्त्रियों का मान किस प्रकार रखना चाहिये, तथा मनुष्य मात्र से किस प्रकार का व्यवहार रखना चाहिए इत्यादि बातों को सीखने के लिये गृहस्थाश्रम की रचना की गई है। सांसारिक सुखों को भोगने के लिये मनुष्य गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है। परन्तु

विशेष ध्यान रखने योग्य बात यह है कि उसे किसी भी ऐश्वर्य तथा विषय भोग के सुख में मर्यादा के बाहर लिप्त न हो जाना चाहिये। ऐश्वर्य क्षणिक और विषयभोग आयुवृद्धि के लिये हानिकारक है। गृहस्थाश्रमी को अपनी नीति "पद्मपत्र मिवाम्भसा" की भाँति रखनी चाहिये। उसे अभी ५० वर्ष और जीवित रहना है।

गृहस्थाश्रम में मनुष्य का कर्तव्य गृहसुधार है परन्तु केवल कुटिम्बियों की सेवा करना ही कर्तव्य की इति श्री नहीं है। देश की वर्तमान स्थिति में उसे समाज-सुधार और देशोन्नति का महान कार्य उत्साह पूर्वक प्रारम्भ करना चाहिये।

वानप्रस्थाश्रम

प्राचीन समय में आर्य लोग वनों में जाकर तपश्चर्या किया करते थे और इसीलिये इस आश्रम का नाम वानप्रस्थाश्रम है परन्तु देश की वर्तमान स्थिति में वन में जाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि देश-सेवा यही इस आश्रम की तपश्चर्या है। यदि मनुष्य सांसारिक सुखों से विरक्त होकर स्वार्थत्याग और परोपकार का व्रत धारण कर ले तो इस आश्रम का ध्येय सिद्ध हो जाय।

वनों में निवास करने का कारण यह मालूम होता है कि तपश्चर्या करने के लिये आहार, विहार में परिवर्तन की आवश्यकता है। गृहस्थाश्रम में मनुष्य आरामतलब हो जाता है। पहिनने के लिये सुन्दर कीमती वस्त्र, भोजन के लिये मिष्ठान्न और विहार के लिये नाना प्रकार की सुख की वस्तुओं का वह संचय करता है। तपस्वी को इन सब बातों से क्या प्रयोजन। वह तो सात्विक भोजन, साधारण वस्त्र और कुछ

आवश्यक वस्तुओं से ही संतुष्ट रहता है और लोक-कल्याणार्थ निष्काम करता है।

वानप्रस्थाश्रम का कार्यक्षेत्र गृहस्थाश्रम से अधिक फैला हुआ है। गृहस्थाश्रमी को तो केवल संबन्धियों, इष्टमित्रों और व्यवहार और व्यवसाय के कारण सम्बन्ध रखने वाले व्यक्तियों से ही काम पड़ता है परन्तु वानस्थाश्रमो को तो संपूर्ण देश को ही अपना कुटुम्ब बनाना है।

इस आश्रमवासी को आत्मबल, साहस, सहनशीलता समानता और उदारता आदि उत्तम गुणों को हस्तगत कर लेना चाहिये। स्वदेश प्रेम से उसका हृदय भरा रहना चाहिये। 'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' यह भावना उसके हृदय में सदैव जागृत रहनी चाहिये।

समाज में धर्म जागृति करने के लिये, राष्ट्रीय भावनाओं को उत्तेजित करने के लिये, शिक्षा प्रचार तथा समाज सुधार का काम करने के लिये यह आश्रम अत्यंत उपयोगी है। परमेश्वर उस मनुष्य से प्रसन्न रहता है जो परोपकार में अपना जीवन व्यतीत करता है। इस संसार में असंख्य प्राणी जन्म लेते हैं और मर जाते हैं परन्तु जन्म उसी का सफल है जो अपने जीवन में संसार, देश तथा समाज की कुछ न कुछ उन्नति कर जाता है। वानप्रस्थाश्रमी को यह आदर्श सदैव अपने सामने रखना चाहिये।

संन्यासाश्रम

यह चतुर्थ आश्रम है। इसको यति आश्रम तथा योगाश्रम भी कहते हैं। यह आश्रम ज्ञानियों के निवास का स्थान है। 'काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यास कवयो विदुः' काम्य कर्मों का त्याग इसी को ज्ञानी पुरुष संन्यास कहते हैं। ईश्वर भक्ति और अखिल जगत का हितचिंतन यही संन्यासी का कर्त्तव्य

है। 'समः सर्वेषु' यह उसका सिद्धान्त है और इसी के अनुसार वह आचरण करता है।

संन्यासाश्रम में प्रवेश करते समय मनुष्य वयोवृद्ध हो जाता है। संसार के अनुभव से उसकी बुद्धि परिपक्व हो जाती है। पहिले तीन आश्रमों में रहकर उसने जो अनुभव प्राप्त किया है उसका वह सारा सार विचार करने लगता है। संसार सत्य है अथवा मिथ्या यह समस्या उसके सामने उपस्थित होती है। संसार की प्रत्येक वस्तु उसे अनित्य प्रतीत होती है। दिन-रात का चरखा, जीवन की क्षणभंगुरता, सुख और दुःख की चंचलता, उत्पत्ति, स्थिति और लय की विचित्रता तथा माया के अगणित चमत्कार देखकर वह विस्मय-सागर में गोते खाने लगता है और मुक्तकण्ठ से परमेश्वर की अवर्णनीय लीला की प्रशंसा करते हुए मोक्ष की याचना करने लगता है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहाः—

> ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
> भ्रामयन्सर्व भूतानि यंत्रारूढेन मायया॥
> तमेव शरणं गच्छ सर्व भावेन भारत।
> तत्प्रसादात्परांशान्तिस्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

योगेश्वर के इस अमृतोपदेश का वह सदैव पान करता है और परमपद प्राप्त करने के लिये सांसारिक मोह को छोड़ देता है? धैर्य, क्षमा, शान्ति, दया इत्यादि सात्विक गुणों से उसका हृदय परिपूर्ण रहता है। वह वासनाओं को अपने वश में कर लेता है। सुख और दुःख में समान रहता है, घट घट में परमेश्वर का ही वास देखता है और उसी के ध्यान में अपना समय व्यतीत करता है। जो मनुष्य इन गुणों से युक्त है वही पूर्ण संन्यासी, योगी और ज्ञानी है और मोक्ष का सच्चा अधिकारी है।

सचित्र, मनोरञ्जक, शिक्षाप्रद, सरल, रोचक, जीवन को ऊँचा उठानेवाली सस्ती पुस्तकें

छात्र-हितकारी पुस्तकमाला ने अपनी उत्तमोत्तम पुस्तकों द्वारा युवकों और विद्यार्थियों की जो सेवा की है, उनमें जो जीवन फूँका है, उससे हिन्दी-संसार भली भाँति परिचित है। अब छोटे-छोटे बालकों को आदर्श महापुरुष बनाने और सुखमय जीवन बिताने के लिए हमने महापुरुषों की सरल जीवनियाँ बच्चों ही के लायक, मनोरञ्जक भाषा में, मोटे टाइप में निकालने का निश्चय किया है। ऐसी सैकड़ों जीवनियाँ निकाली जायँगी, जो स्थायी ग्राहकों को पौन मूल्य में मिलेंगी। नीचे लिखी पुस्तकें प्रकाशित होगई हैं। प्रत्येक का मूल्य ।) है।

१—श्रीकृष्ण
२—महात्मा बुद्ध
३—रानडे
४—अकबर
५—महाराणा प्रताप
६—शिवाजी
७—स्वामी दयानन्द
८—लो० तिलक
९—जे० एन० ताता
१०—विद्यासागर
११—स्वामी विवेकानन्द
१२—गुरु गोविन्दसिंह
१३—वीर दुर्गादास
१४—स्वामी रामतीर्थ
१५—सम्राट् अशोक
१६—महाराज पृथ्वीराज
१७—श्रीरामकृष्ण परमहंस
१८—महात्मा टॉल्स्टॉय
१९—रणजीतसिंह
२०—महात्मा गोखले
२१—स्वामी श्रद्धानन्द
२२—नेपोलियन
२३—बा० राजेन्द्रप्रसाद
२४—सी० आर० दास
२५—गुरु नानक
२६—महाराणा सांगा
२७—पं० मोतीलाल नेहरू
२८—पं० जवाहरलाल नेहरू
२९—श्रीमती कमला नेहरू
३०—मीराबाई
३१—इब्राहिम लिंकन
३२—अहिल्याबाई
३३—मुसोलिनी
३४—हिटलर
३५—सुभाषचन्द्र बोस
३६—राजा राममोहनराय

मैनेजर—छात्रहितकारी पुस्तकमाला, दारागंज प्रयाग।